कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास
को समर्पित

र्ष 50 अंक : 9 जुलाई 2004 मूल्य : सात रुपए

ग्रामीण विकास का 'पूरा' मॉडल

ग्रामीण विकास और बौद्धिक संपदा अधिकार

सूचना प्रौद्योगिकी : गांवों की ओर बढ़ते कदम

पॉलीथिन प्रदूषण स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा

किसानों के लिए बेहद उपयोगी पादप हार्मोन

राजस्थान में धार्मिक पर्यटन के विकास की संभावनाएं

उच्च आय का व्यवसाय ब्रॉयलर पालन

अच्छी सेहत के लिए पर्याप्त नींद जरूरी

बढ़िया गुड़ उत्पादन से हो सकती है अच्छी आमदनी

सदन के संयुक्त अधिवेशन को राष्ट्रपति का संबोधन : कुछ अंश

हम यह सुनिश्चित करेंगे कि अर्थव्यवस्था लंबे समय तक प्रतिवर्ष कम से कम 7–8 प्रतिशत की वृद्धिदर इस प्रकार बनाए रखे जिससे रोजगार का सृजन हो और हर परिवार को सुनिश्चित जीविका प्राप्त हो। ऐसा करते समय मेरी सरकार किसानों, खेतिहर मजदूरों और कामगारों की आय में वृद्धि करने और उनका कल्याण करने, महिलाओं को सशक्त बनाने और अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अन्य पिछड़े वर्गों और धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों के लिए समान अवसर प्रदान करने पर बल देगी। मेरी सरकार सामाजिक और आर्थिक विकास की प्रक्रिया को आगे बढ़ाएगी ताकि 21वीं शताब्दी भारत की शताब्दी बन सके। इसके लिए उन आर्थिक सुधारों में तेजी लाने की आवश्यकता है जिसकी बदौलत देश में तीव्र आर्थिक विकास के नए युग का सूत्रपात हुआ। कृषि, उद्योग और सेवाओं में और सुधार किए जाएंगे। इन सुधारों में मानवीय दृष्टिकोण अपनाया जाएगा और यह सुनिश्चित किया जाएगा कि इनसे होने वाले लाभ शहरी गरीबों और उन ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुंचें जहां हमारी अधिकांश जनता रहती है।

संवैधानिक प्रावधानों की भावना के अनुरूप ग्रामस्तरीय लोकतंत्र के जरिए ग्रामीण विकास की गति को तेज करने के लिए सरकार प्रतिबद्ध है। हमारे देश में 2.3 लाख ग्राम पंचायतें तथा मध्यवर्ती व जिला स्तरों की पंचायती राज संस्थाएं हैं। कार्यों, कार्यकर्ताओं और निधियों के कारगर अंतरण की मार्फत इन्हें सशक्त बनाया जाएगा ताकि ये भागीदारी पर आधारित लोकतंत्र की सच्ची संस्थाओं के रूप में उभर सकें। ग्रामसभा को पंचायती राज प्रणाली की नींव के रूप में उभरने के लिए सशक्त बनाया जाएगा। सरकार यह सुनिश्चित करेगी कि गरीबी उपशमन और ग्राम विकास कार्यक्रमों की सभी निधियां पंचायत निकायों को सीधे उपलब्ध कराई जाएं ताकि वे लोगों की बेहतर सेवा कर सकें। इस प्रकार की निधियों के प्रभावी उपयोग के लिए समुचित दिशानिर्देश तैयार किए जाएंगे।

सरकारी निवेश का एक बड़ा हिस्सा गांवों तक पहुंचाया जाएगा और ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों, बिजली और पेयजल एवं बुनियादी सुविधाओं में सुधार लाने पर विशेष बल दिया जाएगा। शहरी–ग्रामीण अंतर को पाटने हेतु ग्रामसमूहों को एक–दूसरे से जोड़ने पर विशेष बल दिया जाएगा ताकि सभी वर्गों के लोगों को समान आर्थिक अवसर उपलब्ध हो पाएं। हमारे मन में यह धारणा नहीं होनी चाहिए कि निम्नतर गुणवत्ता की ग्रामीण अवसंरचना या निम्नस्तरीय उत्पाद ग्रामीण जरूरतों को पूरा करने के लिए काफी होंगे। पिछड़े और गरीब क्षेत्रों को तरजीह देते हुए कृषि में सरकारी निवेश को पर्याप्त रूप से बढ़ाया जाएगा ताकि किसान की आय में और अधिक वृद्धि की जा सके। सरकार यह सुनिश्चित करेगी कि कृषिप्रवाह को पर्याप्त रूप से बढ़ाया जाए और छोटे तथा सीमांत किसानों को अधिकाधिक संस्थागत ऋण महैया कराया जाए। संपूर्ण ग्रामीण ऋण प्रणाली को दुरुस्त किया जाएगा। कृषि बीमा योजनाओं को किसानों की जरूरतों के और अनुकूल बनाया जाएगा।

सरकार, वारानी खेती के लिए विशेष कार्यक्रम शुरू करेगी। देश के शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में स्थित जिलों के लिए एक गहन कृषि विकास कार्यक्रम चलाया जाएगा। जलागम विकास परियोजनाओं का बड़े पैमाने पर संवर्धन किया जाएगा और पिछले कुछ वर्षों से निष्क्रिय पड़े बंजर भूमि विकास कार्यक्रम को पुनर्जीवित किया जाएगा। मेरी सरकार यह सुनिश्चित करेगी कि पूरे देश में किसानों को उचित और लाभप्रद कीमतें मिलें और सरकारी एजेंसियां, जिन्हें उपार्जन और विपणन की जिम्मेदारी सौंपी गई हैं, गरीब और पिछड़े राज्यों और जिलों के किसानों पर विशेष ध्यान दें। विश्व व्यापार संगठन में हमारे विशाल कृषक समुदाय, जोकि देश की रीढ़ हैं, के हितों और जीविका की पूर्ण सुरक्षा की जाएगी। सरकार यह सुनिश्चित करेगी कि खेतिहर मजदूरों के लिए न्यूनतम मजदूरी कानूनों का कार्यान्वयन भली–भांति हो। सभी कृषकों के हितों के संरक्षण के लिए कारगर कदम उठाए जाएंगे। भूमि सुधार प्रक्रिया में तेजी लाई जाएगी और भूमिहीनों को अतिरिक्त उपजाऊ भूमि के वितरण हेतु द्विगुणित प्रयास किए जाएंगे।

सरकार देश की सिंचाई क्षमता के दोहन को गति प्रदान करेगी। इस समय चल रही सभी सिंचाई परियोजनाओं को एक निश्चित समय–सीमा के भीतर पूरा किया जाएगा। सरकार को इस बात की चिंता है कि हमारी जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा स्वच्छ पेयजल की सुविधा से वंचित है। मेरी सरकार नवपरिवर्तनकारी योजनाएं तैयार करने हेतु राज्य सरकारों के साथ मिलकर काम करेगी। इन योजनाओं में वर्षाजल का एकत्रीकरण तथा विद्यमान तालाबों की गाद को साफ करने का कार्य भी शामिल होगा।

युवाओं के लिए रोजगार के अवसरों के ह्रास का पीड़ादायी बोध सरकार को है। संगठित क्षेत्र में निवेश के लिए सहायक वातावरण तैयार करके सरकार रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए नीतियां अपनाएगी। लघु उद्योग और स्वरोजगार के लिए ऋण सुविधाओं का व्यापक विस्तार करने के साथ–साथ सेवा क्षेत्र को सभी प्रकार की सहायता दी जाएगी ताकि वह अपनी वास्तविक रोजगार क्षमता को मूर्त रूप दे सके। ग्रामीण उद्योग, वस्त्र उद्योग, हस्तशिल्प, बागवानी, जलकृषि, वानिकी, दुग्ध विकास और कृषि प्रसंस्करण जैसे अन्य क्षेत्रों में भी नए रोजगार सृजित किए जाएंगे ताकि ग्रामीण और शहरी युवा लाभान्वित हो सकें। प्रत्येक ग्रामीण घर में शारीरिक रूप से समर्थ कम से कम एक व्यक्ति को एक वर्ष में 100 दिनों का सुनिश्चित रोजगार देने की दृष्टि से शीघ्र ही एक राष्ट्रीय सुनिश्चित रोजगार अधिनियम बनाया जाएगा और इसे चरणबद्ध रूप से कार्यान्वित किया जाएगा।

महिलाएं और बच्चे, विशेषतौर पर जो गरीब परिवारों के हैं, हमारे समाज के अत्यंत असुरक्षित वर्ग हैं और इनकी ओर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। सरकार पंचायतों को दी जाने वाली सारी निधियों का कम से कम एक तिहाई अंश महिलाओं और बच्चों के विकास से संबंधित कार्यक्रमों के लिए निर्धारित करेगी। ग्रामीण महिलाओं और उनके संगठनों को पेयजल, स्वच्छता, प्राथमिक शिक्षा, स्वास्थ्य और पोषाहार

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय की
प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष : 50 ● अंक : 9

आषाढ़–श्रावण 1926

जुलाई 2004

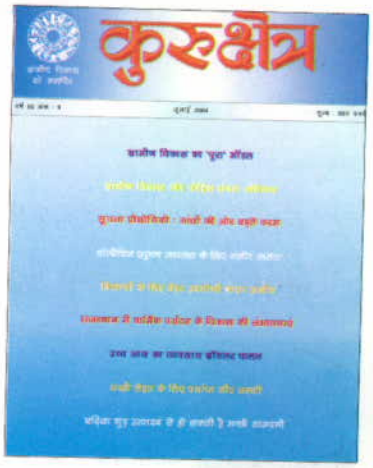

प्रभारी संपादक
ललिता खुराना

उप संपादक
जयसिंह

संपादकीय पत्र–व्यवहार
संपादक, कुरुक्षेत्र
कमरा नं. 655/661, 'ए' विंग,
गेट नं. 5, निर्माण भवन
ग्रामीण विकास मंत्रालय
नई दिल्ली–110011
दूरभाष : 23015014,
फैक्स : 011–23015014
तार : ग्राम विकास
वेबसाइट : Publicationsdivision.nic.in
ई–मेल : dpd@sh.nic.in dpd@pub.nic.in

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
डी.एन. गांधी
व्यापार व्यवस्थापक
दूरभाष : 24367260, 2436509, 24365610

आवरण
अमित

सज्जा
अजय भंडारी

मूल्य एक प्रति	:	सात रुपये
वार्षिक शुल्क	:	70 रुपये
द्विवार्षिक	:	135 रुपये
त्रिवार्षिक	:	190 रुपये

विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)

पड़ोसी देशों में	:	500 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	700 रुपये (वार्षिक)

इस अंक में

लेख

ग्रामीण विकास का 'पूरा' मॉडल : ग्रामीण क्षेत्रो में शहरी सुख–सुविधाएं मुहैया कराने की योजना	श्याम सुंदर सिंह चौहान साधना सिंह	6
ग्रामीण विकास और बौद्धिक संपदा अधिकार	टी.सी. जेम्स	11
संचार प्रौद्योगिकी : गांवों की ओर बढ़ते कदम	जगनारायण	16
पॉलीथिन प्रदूषण स्वास्थ्य के लिए खतरा	डा. उमेश चंद्र अग्रवाल	20
पादप हार्मोन : किसानों के लिए बेहद उपयोगी	डा. प्रदीप कुमार मुखर्जी	24
बदलती आर्थिक परिस्थितियों के बीच ग्रामीण महिलाएं	सुभाष सेतिया	26
मध्यप्रदेश के आदिवासियों की जीवनशैली में लघुवनोपज का महत्व	डा. अंजिला गुप्ता, डा. नीति जैन	29
राजस्थान में धार्मिक पर्यटन के विकास की संभावनाएं	डा. धनपत सिंह जैन	33

हमारी संस्कृति

गुरु पूर्णिमा का सरोकार	कृष्ण कल्कि	36

रोजगार

उच्च आय का व्यवसाय ब्रॉयलर पालन	गंगाशरण सैनी	39
बढ़िया गुड़ उत्पादन से हो सकती है अच्छी आमदनी	कुमार मयंक	41

सफलता की कहानी

एक गांव के कायापलट की कहानी	इरा	43

स्वास्थ्य चर्चा

तृष्णा रोग से बचने के उपाय	डा. नीना कनौजिया	45
अच्छी सेहत के लिए पर्याप्त नींद जरुरी	डा. दिनेश मणि	47

पुस्तक चर्चा

पत्रकारिता की विविध विधाओं की चर्चा	आसीत कुणाल	48

कुरुक्षेत्र की एजेंसी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत के बारे में ए.के. दुग्गल, सहायक विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से पत्र–व्यवहार करें। विज्ञापनों के लिए विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से संपर्क करें। दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516

कुरुक्षेत्र में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

उपलब्धता, बिजली की उपलब्धता, शुद्ध जलापूर्ति, स्वच्छता सुविधाओं तथा रहने योग्य आवास आदि की उपलब्धता को माने जाने का सुझाव दिया है।

इस प्रकार 'पूरा' का स्वप्न :

- मलिन बस्तियों या झोपड़ियों से भव्य मकानों की ओर
- घनी भीड़भाड़ वाली गलियों से साफ–सुथरे चौड़े मार्गों की ओर;
- शारीरिक श्रम से ज्ञान आधारित व्यवसाय की ओर जैसे बिंदुओं पर केंद्रित है।

परंपरागत मॉडल के ऊपर 'पूरा' मॉडल की श्रेष्ठता

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, चेन्नई के पूर्व निदेशक प्रो. पी.वी. इंद्रसेन का कहना है कि ग्रामीण विकास की परंपरागत योजनाएं मुख्य रूप से दो बड़ी कमियों से ग्रसित हैं:

(1) इन योजनाओं से रोजगार के जो अवसर सृजित होते हैं उनमें श्रमिकों को जीवन निर्वाह मजदूरी ही प्राप्त हो पाती है न कि संगठित क्षेत्रक द्वारा दी जा रही उचित मजदूरी।

(2) उत्पाद स्थानीय बाजार को लक्ष्य करते हुए विकसित एवं विनिर्मित किए जाते हैं जो न तो बड़े पैमाने पर उत्पादित किए जाते हैं और न सुनिश्चित।

'पूरा' मॉडल इन दोनों ही बाधाओं को दूर करते हुए ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों की विशेषताओं को मिलाकर ग्रामीण क्षेत्र के उत्पादकों को राष्ट्रीय एवं वैश्विक स्तर पर वृहत्तर बाजार तंत्र उपलब्ध कराता है तथा श्रमिकों को जीवन निर्वाह मजदूरी के स्थान पर उचित मजदूरी सुनिश्चित कराता है।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि भारत के भीतर ग्रामीण एवं आर्थिक परिवेश में अलग–अलग कुछ ऐसी विशिष्टताएं सन्निहित हैं जो दूसरे देशों में नहीं पाई जातीं। उदाहरण के तौर पर शहरी क्षेत्रों (i) स्वच्छ जलापूर्ति, विद्युत, दूरसंचार, स्थानीय निकायों के स्तर पर साफ–सफाई, मनोरंजन के बेहतर साधन; (ii) दुकानें एवं बाजार, औषधालय, खेल के मैदान तथा स्टेडियम जैसी प्राथमिक व स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सेवाएं; (iii) विद्यालय–कालेज–विश्वविद्यालय, पुलिस प्रशासन, रेलवे, अग्निशमन सेवाएं, अस्पतालों जैसी द्वितीयक सेवाएं तथा (iv) हवाई अड्डे, थोक बाजार, बड़े–बड़े अस्पतालों जैसी तृतीयक सेवाएं मौजूद हैं जो लोगों के जीवन को काफी बड़ी सीमा तक सुविधाजनक बनाती हैं। जहां तक ग्रामीण क्षेत्रों का प्रश्न है तो वहां (i) शहरों की तुलना में आवास की सस्ती व्यवस्था; (ii) स्वच्छ तथा स्वस्थ पर्यावरण; (iii) निवास स्थान तथा कार्यस्थल के बीच अपेक्षाकृत कम दूरी तथा आने–जाने में लगने वाला कम समय ग्रामीण क्षेत्र के निवासियों के जीवन को सुखमय बनाता है।

'पूरा' मॉडल यथार्थ में ग्रामीण एवं शहरी दोनों ही क्षेत्रों की विशिष्टताओं को मिलाकर एक ऐसे परिवेश का निर्माण करता है जिसमें सभी आयु के लोगों के शारीरिक एवं बौद्धिक विकास की सभी संभावनाएं मौजूद हैं। इस प्रकार के क्षेत्र विकसित हो जाने पर न केवल ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक विकास की गति तेज होगी, वरन् ग्रामीण क्षेत्रों की ओर जनसंख्या का पलायन भी रुकेगा।

आर्थिक एवं सामाजिक विकास हेतु 'पूरा' सहयोग और समन्वय का अनूठा संगम है। यही कारण है कि प्रो. पी.वी. इंद्रसेन 'पूरा' को **'ग्रामीण परिवेश के साथ शहरी सुख – सुविधाओं हेतु सहयोग'** (पार्टनरशिप फॉर अर्बन अमेनटिज विद रूरल एंबियंस) कहलाना अधिक पसंद करते हैं।

'पूरा' के मानकों का निर्धारण

'पूरा' का मॉडल काफी कुछ ज्ञानवान अर्थव्यवस्था पर टास्कफोर्स द्वारा विकसित 'ग्रामनगरीकरण' मॉडल का सुधरा हुआ रूप है। **ग्रामनगरीयकरण मॉडल** को कार्यरूप देने के लिए टास्कफोर्स ने निम्नलिखित सुझाव दिए हैं:

- 30 कि.मी. परिधि और 500 मीटर चौड़ी एक गोलाकार पट्टी, जिसमें गांव आते हों, स्थायी पट्टे पर ली जाए। अधिग्रहण की लागत को कम से कम रखने (कृषि उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना) के उद्देश्य से, जहां तक संभव हो, ऐसे मार्ग (पट्टी) का चयन किया जाए जो सबसे कम उपजाऊ और सबसे कम कीमत वाली भूमि से गुजरता हो तथा इससे पहले से विद्यमान नदियों, नहरों, रेलमार्गों या राजमार्गों के संचालन में बाधा उत्पन्न न हो।
- इस भूमि को अधिग्रहण द्वारा न लिया जाकर पट्टे पर लिया जाए। इसका वार्षिक किराया इस भूमि पर किसानों द्वारा उगाई गई फसल के चालू मूल्य से दुगुना हो। जो कृषक इस प्रकार की भूमि लेने से विस्थापित हों उन्हें उनके द्वारा अभ्यर्पित प्रति हेक्टेयर कृषि भूमि के बदले 10–20 वर्गमीटर व्यावसायिक स्थान उपलब्ध कराया जाए। इस व्यवस्था से कृषकों तथा गलियारा विकसित करने वाले प्रायोजकों दोनों को ही लाभ मिलेगा। कृषकों को फसल कीमत सूचकांक आधारित आय, जो वर्तमान में उनके द्वारा अर्जित आय की तिगुनी तक हो सकती है, की गारंटी के साथ–साथ व्यावसायिक स्थल से वे जो कुछ अर्जित कर सकें, प्राप्त होगा। व्यावसायिक स्थल को विकसित कर वे स्वरोजगार भी प्राप्त कर सकेंगे।
- इस गलियारे के बीचों–बीच एक मुद्रिका सड़क (रिंग रोड) का निर्माण करके उस पर नियमित बस सेवा प्रारंभ की जाए। सड़क की निर्माण लागत सरकार वहन करे। सड़क निर्माण परियोजना की कुल लागत का दो तिहाई केंद्र सरकार द्वारा राज्य सरकार को अनुदान के रूप में दिया जाए। शेष धनराशि ऋण लेकर जुटाई जाए। इस पर दिए जाने वाले ब्याज तथा मूलधन के पुनर्भुगतान हेतु पट्टी पर मकान एवं व्यावसायिक स्थल बनाने वालों से नाममात्र का किराया (1 से 2 रुपये प्रति वर्ग फुट × भवन का भूतल का सूचकांक) लिया जा सकता है। जब तक इस गलियारे पर पूरी तरह से बस्ती न बस जाए, उस समय तक इस अतिरिक्त लागत को राज्य सरकार वहन करे।
- इस प्रकार से विकसित वृत्तीय मार्ग पर दोनों ओर को नियमित बस सेवाएं संचालित की जाएं। प्रारंभ में हो सकता है कि इन बसों को पर्याप्त यातायात न मिले लेकिन फिर भी बस सेवा की आवृत्ति घटाई नहीं जानी चाहिए।
- इसी परिवृत्त पर उच्चकोटि की इंटरनेट सेवाएं भी प्रदान की जानी चाहिए ताकि कृषकों को फसलों की कीमतों में होने वाले उतार–चढ़ावों तथा मौसमी परिवर्तनों की त्वरित जानकारी मिल सके।

- इस परिवृत्त में कार्यरत तीनों ही प्रकार के सेवायोजकों – व्यवसायियों, सामाजिक सेवाएं प्रदान करने वालों तथा सरकारी एजेंसियों को अपने कर्मचारियों को मकान बनाने के लिए पट्टे पर स्थान उपलब्ध कराना चाहिए।
- स्कूल तथा चिकित्सालय जैसी सामाजिक सेवाओं के लिए निःशुल्क भूमि उपलब्ध कराई जाए। इतना ही नहीं इनके परिसरों के आसपास की भूमि इन्हें नितांत व्यावसायिक उद्देश्य से आवंटित की जाए। इन संस्थाओं को भूमि के व्यावसायिक उपयोग से प्राप्त किराए के रूप में गारंटी–शुदा आय का एक स्रोत प्राप्त हो जाएगा।
- इन क्षेत्रों में जल संग्रहण तथा गंदे पानी के निस्तारण का कार्य क्षेत्र के निवासियों के अति लघुसमूहों या आवासीय समूहों के प्रबंधन में छोड़ दिया जाना चाहिए।
- अन्य सभी कार्य जैसे सार्वजनिक संपत्तियों तथा स्थलों का अनुरक्षण आदि पंचायतों द्वारा कराए जाएं और पंचायतें अनुश्रवण अधिकरण के रूप में कार्य करें।

केंद्रीय मंत्रिमंडल ने अपनी 20 जनवरी, 2004 की बैठक में 'पूरा' अर्थात 'ग्रामीण क्षेत्रों को शहरी सुख–सुविधाएं प्रदान करना' कार्यक्रम को सिद्धांत रूप से सहमति प्रदान की। **ग्रामीण–शहरी विषमता के अंतर को कम करना तथा संतुलित सामाजिक–आर्थिक विकास प्राप्त करना ही इस कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य है। 'पूरा' कार्यक्रम अगले पांच वर्षों में 10–15 गांवों के समूह वाले 5,000 ग्रामीण समूहों में चलाया जाएगा। पूर्वोत्तर क्षेत्र के सभी राज्यों, योजना आयोग द्वारा चिन्हित अन्य विशेष वर्ग के राज्यों तथा पिछड़े क्षेत्रों को इस कार्यक्रम के तहत प्राथमिकता प्रदान की जाएगी।**

राष्ट्रपति डा. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के 'विज़न 2020' को साकार करने के लिए मंत्रिमंडल की उपर्युक्त स्वीकृति के अनुरूप प्रधानमंत्री कार्यालय में आर्थिक परामर्शदाता डा. एस. नारायण तथा ग्रामीण विकास मंत्रालय में सचिव एम. शंकर ने 'ग्रामीण क्षेत्रों के लिए शहरी सुख–सुविधाएं प्रदान करने की योजना' हेतु दिशा–निर्देश तैयार किए हैं जो इस प्रकार हैं:

- 'पूरा' का विचार इस अवधारणा पर आधारित है कि किसी शहर/कस्बे के चारों ओर बसे गांवों में तीव्रतर विकास की अन्तःनिर्मित संभाव्यता मौजूद है और यदि इन गांवों को आधारिक अवसंरचना सुविधाएं मुहैया करा दी जाती हैं तो न केवल उनका स्वयं का तेजी से विकास होता है, बल्कि वे आस–पड़ोस के क्षेत्रों के लिए संवृद्धि केंद्र बन जाते हैं। इसलिए इस योजना के अंतर्गत केंद्र एवं राज्य सरकार के वित्तीय सहयोग से ग्रामीण क्षेत्रों में आधारिक अवसंरचना के अंतरालों को भरा जाना है।
- 'पूरा' योजना के अंतर्गत यथासंभव ऐसे गांव समूहों का चयन किया जाना है जहां आधारिक अवसंरचनात्मक सुविधाएं लगभग शून्य हैं। इन क्षेत्रों के लिए विद्युत आपूर्ति, जलापूर्ति, सड़कों एवं परिवहन सुविधाओं का विकास, दूरसंचार, इंटरनेट तथा सूचना प्रौद्योगिकी सेवाओं का विकास, विद्यमान विद्यालयों का उन्नयन एवं उच्चीकरण कर उन्हें हाईस्कूल स्तर का बनाना, स्वास्थ्य सुविधाओं का विकास, कृषि उत्पादों के विपणन हेतु बाजारों का विकास आदि आधारिक अवसंरचनात्मक सुविधाओं को आधार मानकर प्रत्येक 'पूरा' हेतु विस्तृत परियोजना रिपोर्ट (डीपीआर) तैयार की जाएगी।
- यद्यपि ग्रामीण क्षेत्रों में माध्यमिक शिक्षा तथा तकनीकी शिक्षा के प्रसार एवं विस्तार का कार्यक्रम पहले से ही चल रहा है, तथापि इन क्षेत्रों में नए तकनीकी प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना करने के लिए अथवा विद्यमान औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों/पोलीटेक्नीकों का उच्चीकरण करने के लिए निजी क्षेत्र को प्रोत्साहन दिया जाएगा।
- अगले पांच वर्षों में देश के विभिन्न भागों में 5,000 ग्रामीण गांव समूहों का चयन 'पूरा' के अंतर्गत किया जाएगा। प्रत्येक गांव समूह में 10 से 15 तक गांव होंगे। प्रतिवर्ष 1,000 गांव समूहों का चयन करके प्रत्येक समूह को 2 से 3 वर्ष के भीतर विकसित किया जाएगा।
- **इस योजना में मैदानी क्षेत्र के 30 हज़ार से एक लाख तक की जनसंख्या वाले तथा पर्वतीय क्षेत्रों में 20 हजार से 50 हजार तक की जनसंख्या वाले उन कस्बों को प्राथमिकता प्रदान की जाएगी जहां विद्युत संयोजनों की संख्या काफी कम है, नलों से जलापूर्ति की सुविधा उठाने वाले परिवारों का प्रतिशत नीचा है तथा साक्षरता दर सामान्यतः नीची है।**
- विशेष वर्ग के पिछड़े राज्यों तथा राष्ट्रीय औसत से अधिक निर्धनता अनुपात वाले राज्यों में प्रत्येक कस्बे के आसपास 10–15 गांवों के दो–दो समूहों का चयन किया जाएगा। राष्ट्रीय औसत से कम निर्धनता अनुपात वाले राज्यों में प्रत्येक कस्बे के आसपास केवल एक गांव समूह का चयन किया जाएगा। सरकार ने इस आधार पर 826 शहरों/कस्बों को चिन्हित कर लिया है। अब इन शहरों/कस्बों से सटे 10–15 गांव वाले गांवसमूहों का चयन किया जाना है।
- आधारिक अवसंरचनात्मक अंतराल को कम करने के लिए डीपीआर में चिन्हित एवं अनुमोदित परियोजनाओं के लिए 100 प्रतिशत धनराशि संघ सरकार द्वारा उपलब्ध कराई जाएगी।
- जिला स्तर पर 'पूरा' के कार्यान्वयन हेतु जिलाधिकारी को नोडल अधिकारी बनाया जाएगा। ये नोडल अधिकारी अनुमोदित डीपीआर परियोजनाओं के कार्यान्वयन से संबंधित केंद्रीय सरकार तथा राज्य सरकार की विभिन्न एजेंसियों एवं परियोजना कार्यान्वयन समिति के बीच समन्वय स्थापित करने का कार्य भी करेंगे। जिला स्तर पर जिलाधिकारी की अध्यक्षता में गठित परियोजना कार्यान्वयन समिति जिला पंचायत के साथ निकट का संपर्क बनाते हुए कार्य करेगी।
- चूंकि 'पूरा' में केंद्र सरकार के विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों की भागीदारी है इसलिए नीतियों को सही दिशा देने तथा विभिन्न मंत्रालयों/विभागों के बीच समन्वय स्थापित करने के लिए कैबिनेट सचिव की अध्यक्षता में सचिवों की एक उच्चाधिकार प्राप्त समिति की स्थापना की जाएगी। यह समिति 'पूरा' कार्यक्रम का मूल्यांकन एवं अनुश्रवण करेगी। समिति की कम से कम एक त्रै–मासिक बैठक होगी।
- इसी प्रकार की एक–एक समिति राज्य स्तर पर भी गठित की जाएगी। इस समिति

की अध्यक्षता राज्यों के मुख्य सचिव करेंगे।

- 'पूरा' की सभी योजनाओं का मूल्यांकन ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा किया जाएगा।

'पूरा' योजना के कार्यान्वयन हेतु बनाए गए दिशा–निर्देश राष्ट्रपति डा. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के मॉडल की मूल भावना की अनदेखी करते प्रतीत होते हैं। डा. कलाम का 'पूरा' मॉडल सहभागिता एवं समन्वय पर आधारित है जिसमें निजी उद्यमियों, धार्मिक संगठनों, गैर–सरकारी स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका अति महत्वपूर्ण है। सरकारी अभिकरणों से सहयोगी भूमिका निभाने की अपेक्षा की गई है। जैसाकि डा. कलाम कहते हैं, 'पूरा' के उद्यमी के पास इतना कौशल होना चाहिए कि वह बैंकों के साथ मिलकर व्यवसाय योजना बना सके और सहायता हेतु बुनियादी आधार तैयार कर सके जैसेकि शिक्षा संस्थाएं, स्वास्थ्य केंद्र और लघु उद्योग, परिवहन सेवाएं, टेली एजुकेशन, टेलीमेडीसिन, ई–गवर्नेंस सेवाएं। अपने उत्पाद और सेवाएं बेचने के लिए राष्ट्रीय एवं विश्व बाजार के साथ घनिष्ठ सहयोग स्थापित करने में सरकार की ग्रामीण विकास की योजनाएं जैसे सड़क, संचार और परिवहन–इस कार्य में सहयोगी की भूमिका निभाएंगे। यही कारण है कि डा. कालम 'पूरा' परिकल्पना को साकार करने के लिए प्रमुख औद्योगिक घरानों, देश के चोटी के प्रबंधकों, शिक्षण एवं प्रौद्योगिकी संस्थानों को शामिल किए जाने पर बल देते हैं। जबकि सरकार द्वारा तैयार की गई कार्ययोजना में इनका कहीं कोई उल्लेख नहीं है। अत्यधिक लोक महत्व की एक और योजना मात्र सरकारी योजना बनने जा रही है। इसके कार्यान्वयन का दायित्व एक बार फिर से जनपद में औसतन एक वर्ष तक की सेवा करने वाले जिलाधिकारी के कंधों पर डाला जा रहा है जो राजनीतिक हस्तक्षेप के बिना कार्य ही नहीं कर सकता। **इस योजना को सरकारी तंत्र के अधीन कर देने का अर्थ है संसाधनों के रिसाव को बढ़ावा देना तथा राजनीतिक हस्तक्षेप से चयन में पक्षपात किया जाना।**

निष्कर्ष

इसमें कोई संदेह नहीं कि स्वातंत्र्योत्तर भारत में आर्थिक विकास के लिए जो कार्य नीति अपनाई गई, उससे ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के बीच असमानताएं बढ़ी हैं। इसी से ग्रामीणों में शहरों के प्रति आकर्षण में भी वृद्धि हुई है और संभवतः इसी ने ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर जनसंख्या पलायन को बढ़ाया है। वरना क्या कारण है कि ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में नीची जन्मदर के बावजूद शहरी क्षेत्रों की जनसंख्या की संवृद्धि दर ऊंची रही है? इससे एक तथ्य तो स्पष्टतः उभरकर सामने आया है कि यदि स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास, संपर्क – भौतिक, इलेक्ट्रॉनिक, बौद्धिक तथा आर्थिक; रोजगार एवं आय सृजन तथा लाभ अर्जन की बेहतर संभावनाओं के साथ यदि ग्रामीण क्षेत्रों को शहरी क्षेत्रों के समकक्ष लाया जा सके तो समता एवं सामाजिक न्याय पर आधारित समाज की स्थापना करके आर्थिक उच्च संवृद्धि दर प्राप्त करते हुए भारत को विश्व की एक प्रमुख अर्थव्यवस्था के रूप में स्थापित किया जा सकता है। ❑

(लेखक द्वय क्रमशः रीडर एवं विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय कालेज, मांट, मथुरा (उ.प्र.) और रीडर, अर्थशास्त्र विभाग, दयानंद गर्ल्स पी.जी. कालेज, कानपुर (उ.प्र.) हैं।)

IAS (वैकल्पिक विषय एवं सामान्य अध्ययन) PCS
JRF NET
अर्थशास्त्र
द्वारा
आनन्द शुक्ला
★ JRF/NETका अलग बैच
★ सम्पूर्ण नोट्स
★ मॉडल पेपर द्वारा अभ्यास
★ छात्रावास सुविधा उपलब्ध
★ पुस्तकालय सुविधा उपलब्ध
बैच प्रारम्भ
नामांकन जारी
आनन्द एकेडमी
13/3, बन्द रोड, इलाहाबाद ● फोन : 0532-2466692, 9415254465

ग्रामीण विकास और बौद्धिक संपदा अधिकार

टी.सी. जेम्स

वैश्वीकरण व डिजीटल तकनीकों के पदार्पण ने आर्थिक विकास के इंजन को मानव व मशीनी ताकत से बौद्धिक दक्षता में बदल दिया है। इसने विकास की प्रक्रिया में बौद्धिक संपदा अधिकारों (आईपीआर) के महत्व को काफी बढ़ा दिया है। सामान्य अवधारणा यह है कि आईपीआर केवल वैश्विक औद्योगिक अर्थव्यवस्था में ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है और ग्रामीण इलाकों में इसका महत्व कम ही है। यह लेख भारत में ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास के संदर्भ में आईपीआर की भूमिका की विवेचना कर रहा है।

बौद्धिक संपदा में एक संपदा के सभी गुण निहित होते हैं। उसे देखा जा सकता है, महसूस किया जा सकता है जैसे चल व अचल संपत्ति। यह मानव की बौद्धिक संरचना है। एक उदाहरण है संगीत। इसकी विशेषता यह है कि "इसमें सूचना का निरूपण दृष्टव्य वस्तुओं के रूप में तथा विभिन्न स्थानों पर पुनर्निर्माण कर एक साथ कई लोगों द्वारा इस्तेमाल किया जा सकता है जैसे चल व अचल संपत्ति, वे कौन से अधिकार हैं जिन्हें कुल मिलाकर बौद्धिक संपदा अधिकार कहा जा सकता है, इसके बारे में कुछ मतभेद हैं। बौद्धिक संपदा के व्यापारिक पहलुओं पर हुआ अनुबंध निम्न बातों को बौद्धिक संपदा अधिकारों में शामिल करता है:

कॉपीराइट तथा संबंधित अधिकार; ट्रेडमार्क, भौगोलिक लक्षण; औद्योगिक रूपरेखा (डिजाइन); पेटेंट; संपूर्ण क्षेत्र का ले–आउट डिजाइन; सूचना का संरक्षण; करार के तहत प्राप्त हुए लाइसेंस में प्रतियोगी गतिविधियों का नियंत्रण।

इनमें से प्रथम छः के लिए भारत में विशेष कानून बने हुए हैं। सन् 2002 से एक प्रतियोगिता अधिनियम भी पारित हो गया है जिसके तहत एकाधिकार व प्रतिबंधित व्यापारिक व्यवहार आयोग की जगह प्रतियोगिता आयोग ने ले ली है।

बौद्धिक संपदा अधिकार को दो बड़े अधिकारों–कॉपीराइट तथा संबंधित अधिकार और औद्योगिक संपदा अधिकार में बांटा जा सकता है।

कॉपीराइट तथा संबंधित अधिकारों के अंतर्गत संस्कृति, साहित्यिक व कलात्मक भावों के साथ–साथ कलात्मक प्रदर्शन एवं प्रसारण भी शामिल है। औद्योगिक संपदा अधिकारों को यह नाम इसलिए दिया गया है क्योंकि इसका संबंध मुख्यतः औद्योगिक वस्तुओं के उत्पादन व वितरण से है।

कॉपीराइट अधिकार कानून के द्वारा साहित्यिक, नाटकीय, संगीत व कलात्मक कार्यों के रचनाकारों, साउंड रिकार्डिंग्स तथा सिनेमेटोग्राफी फिल्में बनाने वालों को दिए गए हैं। सृजनकारों और निर्माताओं को 'लेखक' कहा जाता है और उनके उत्पाद को 'कार्य'। साहित्य कार्य में कम्प्यूटर प्रोग्राम भी शामिल हैं। कॉपीराइट संरक्षण के लिए यह जरूरी नहीं है कि साहित्य कार्य उत्कृष्ट गुणवत्ता का ही हो। यहां तक कि एक अंकगणित की किताब को भी साहित्यिक कार्य माना जाता है। नाट्य कार्य में कोई संवाद, कोरियोग्राफिक कार्य, किसी मूक दृश्य में मनोरंजन आदि के लिखित या अन्य रूप को संरक्षण प्राप्त है। संगीतात्मक कार्य में संगीत कार्य का आलेखी अंकन शामिल है। 'कलात्मक कार्य' में पेंटिंग, मूर्तिकला, चित्रकला जिसमें रेखाचित्र, मानचित्र, योजना नक्काशी अथवा फोटोग्राफ, वास्तुकला व कलात्मक दस्तकारी शामिल है, इसमें इनकी कलात्मक गुणवत्ता मायने नहीं रखती। यह अधिकार पुनर्निर्माण, वितरण, संप्रेषण, अनुवाद व किसी भी रूप में अपनाने तक फैला है। इलेक्ट्रानिक माध्यम से किसी कार्य के संग्रहण को पुनर्निर्माण ही कहा जाता है। अगर लेखक के किसी मूल कार्य में छेड़छाड या परिवर्तन या उसके अनुकूलन से उसकी छवि प्रभावित होती है तो लेखक उस परिवर्तन व उसके कार्य को अपनाने के विरुद्ध कानूनी लड़ाई लड़ने का अधिकार रखता है। सामान्यतः लेखन कार्यों के मामले में कॉपीराइट की अवधि लेखक की मृत्यु के साठ वर्षों बाद तक रहती है।

इससे संबद्ध अधिकार कलाकारों/प्रस्तुतकर्ताओं तथा प्रसारण संगठनों के हैं जोकि लेखकों के कार्यों की जनता के सामने प्रस्तुति/प्रदर्शन या प्रसारण करते हैं। प्रस्तुतकर्ताओं के अधिकार की अवधि 50 वर्ष होती है। इस दौरान कोई व्यक्ति बिना उसकी अनुमति के उसकी प्रस्तुति की दृश्य या श्रव्य रिकार्डिंग अथवा उसका प्रसारण नहीं कर सकता। हालांकि यदि प्रस्तुतकर्ता अपनी किसी प्रस्तुति को सिनेमेटोग्राफिक फिल्म में शामिल करने की मंजूरी दे देता है तो वह अपनी प्रस्तुति पर प्रस्तुतकर्ता का अधिकार खो देता है।

प्रसारण के पुनर्निर्माण के अधिकार की अवधि 25 वर्ष होती है और इस समयावधि के दौरान बगैर स्वामी की अनुमति के कोई भी व्यक्ति उस कार्य का पुनर्प्रसारण अथवा दृश्य या श्रव्य रिकार्डिंग के माध्यम से लोगों तक संप्रेषित नहीं कर सकता। कुछ देशों में श्रव्य रिकार्डिंग निर्माताओं के अधिकार को कॉपीराइट की बजाए संबद्ध अधिकारों में शामिल किया

जाता है जबकि भारत में ऐसा नहीं है।

ट्रेडमार्क वे पृथक चिन्ह होते हैं जो किसी उत्पाद को उत्पादन कंपनी या निर्माता विशेष का होने की पहचान कराते हैं। यह कलात्मक लेबल, रचना अथवा कोई चिन्ह हो सकता है। हालांकि भारत में किसी चिन्ह का ग्राफिक पंजीकरण कराने के लिए उसका पृथक होना एक शर्त है। इसमें किसी उत्पाद की पैंकिंग, उसके आकार व रंगों के सम्मिश्रण द्वारा उसे अन्य उत्पादों से पृथक किया जाना शामिल है। उद्योगपति अपने उत्पाद एवं सेवा को उसके निर्माण की विधि, उत्पत्ति, गुणवत्ता, सामग्री, सेवाओं के निष्पादन तथा शुद्धता आदि के आधार पर दूसरे उत्पादों व सेवाओं से पृथक करने के लिए प्रामाणिक ट्रेडमार्क प्राप्त कर सकता है। एक चिन्ह किसी एसोसिएशन के सदस्यों, सेवाओं या उत्पाद को एक–दूसरे से अलग करता है। इस अधिकार की अवधि 10 वर्ष होती है जिसका समय–समय पर नवीनीकरण कराया जा सकता है। किसी वस्तु या सेवा के मालिक/स्वामी को ट्रेडमार्क द्वारा उसकी वस्तु या सेवा की पहचान तथा उपयोग का एकाधिकार प्राप्त होता है। किसी भी अन्य गैर–अधिकृत व्यक्ति द्वारा इसका इस्तेमाल दंडनीय है।

भौगोलिक चिन्ह/संकेत का उपयोग उन वस्तुओं के संबंध में किया जाता है जो अपने उद्गम स्थल के कारण कुछ खास विशेषता अथवा गुणवत्ता रखती हों। ऐसी वस्तुओं की पहचान कृषि वस्तुएं, प्राकृतिक वस्तुएं अथवा निर्माण वस्तुओं के रूप में करता है जिनकी गुणवत्ता, प्रतिष्ठा अथवा अन्य विशेषताओं को सीधेतौर पर उसके भौगोलिक स्थल से जोड़ा जा सकता हो। निर्माण वस्तुओं के संदर्भ में यह इस बात को दर्शाता है कि वस्तु के निर्माण की विधि अथवा तैयारी से जुड़ी गतिविधियां निर्देशित भौगोलिक क्षेत्र में हुई हों।

एक पंजीकृत भौगोलिक चिन्ह या संकेत केवल अधिकृत व्यक्तियों द्वारा ही उपयोग में लाया जा सकता है। अन्य किसी व्यक्ति द्वारा इसका इस्तेमाल यह दर्शाता है कि अमुक वस्तु उसके वास्तविक उद्गम स्थल की बजाय किसी और जगह पैदा हुई है, जो लोगों को दिग्भ्रमित करता है और यह इस अधिकार का उल्लंघन माना जाता है। भौगोलिक चिन्ह के इस्तेमाल की अवधि 10 वर्ष है, जिसका समय–समय पर नवीनीकरण कराया जा सकता है। व्यक्तियों या उत्पादकों/निर्माताओं का कोई भी संघ या संगठन या एसोसिएशन या किसी भी कानून के तहत संबद्ध वस्तु के उत्पादकों के हितों का ध्यान रखने वाला संगठन या प्राधिकरण भारत में पंजीकरण के लिए आवेदन कर सकता है।

औद्योगिक डिजाइन किसी उत्पाद के बाहरी अभिलक्षण होते हैं। ये उत्पाद को आकर्षक बनाने के लिए आभूषण का काम करते हैं। ये डिजाइन द्विआयामी या त्रिआयामी अभिलक्षण यानी पैटर्न, रेखा, रंग अथवा इन दोनों का मिला–जुला रूप हो सकते हैं। इनका इस्तेमाल औद्योगिक व हस्तशिल्प उत्पादों के बाजार को बढ़ाने के लिए किया जाता है। पंजीकृत डिजाइन पर कॉपीराइट की अवधि 10 वर्षों तक होती है जिसे 5 वर्षों के लिए बढ़ाया जा सकता है।

पेटेंट किसी खोज के संदर्भ में प्राप्त होने वाला विशिष्ट अधिकार है। उस खोज को किसी भी रूप में इस्तेमाल करने के लिए पेटेंटी के अधिकार प्राप्त करना जरूरी है। किसी उत्पाद या उसको बनाने की नई प्रक्रिया या किसी तकनीकी समस्या के समाधान को भी पेटेंट दिया जा सकता है। पेटेंट अधिनियम 1970 के अनुसार किसी नए उत्पाद या प्रक्रिया की खोज जो औद्योगिक अनुप्रयोग के लायक हो, 'आविष्कार' कहलाती है। आविष्कारी कदम वह लक्षण है जो आविष्कार को कलाविशेष में दक्ष व्यक्ति की सामान्य परिचर्या से अलग करता है। आमतौर पर नवीनता, असाधारणता तथा व्यापारिक अथवा औद्योगिक प्रयोग ही वह सिद्धांत हैं जिनके आधार पर पेटेंट अधिकार दिया जाता है। हालांकि इन सिद्धांतों पर विभिन्न देशों में अलग–अलग राय कायम है। भारतीय पेटेंट अधिनियम में ऐसे आविष्कारों या खोजों की एक लंबी सूची है, जिनका भारत में पेटेंट नहीं कराया जा सकता है। इसमें आधारहीन आविष्कार अथवा ऐसी कोई भी चीज जो स्थापित प्राकृतिक कानून के विरुद्ध हो, ऐसा कोई भी आविष्कार जिसका इस्तेमाल मानव, जीव–जंतु या पेड़–पौधों या पर्यावरण या वातावरण या स्वास्थ्य के लिए घातक हो, किसी वैज्ञानिक सिद्धांत की खोज अथवा निष्कर्ष, उत्पत्ति का सार, प्रकृति में मौजूद किसी जीवित या मृत्त तत्व की खोज, किसी नई संपदा अथवा मौजूद तत्व का नया इस्तेमाल मात्र, कृषि अथवा बागवानी का तरीका, चिकित्सकीय अथवा सर्जरी की प्रक्रिया, पादप व जंतु अथवा उनका कोई भाग जिसमें बीज भी शामिल हैं। विविध किस्म की जातियों, पादप व जंतुओं के उत्पादन अथवा प्रजनन की जीव वैज्ञानिक प्रक्रिया व ऐसा आविष्कार जो वास्तव में एक पारंपरिक ज्ञान है अथवा जो पारंपरिक ज्ञात घटक की ज्ञात लक्षण की मात्र प्रति अथवा जोड़ है। इसके अलावा जिस बौद्धिक संपदा को अन्य कानूनों के तहत संरक्षण प्राप्त है जैसे साहित्यिक कार्य व समाकलित परिपथ की स्थलाकृति हो, भारत में पेटेंट के योग्य नहीं है। परमाणु ऊर्जा के संदर्भ में की गई किसी भी खोज को भारत में पेटेंट अधिकार नहीं दिया जाता, इस समय भारत में किसी भी उत्पाद की बजाय उसके उत्पादन के तरीके को पेटेंट अधिनियम के तहत संरक्षण दिया जाता है। यह अधिकार पेटेंट प्राप्त व्यक्ति को अपनी खोज के उत्पादन का एकाधिकार प्रदान करता है। इस अधिकार की अवधि 20 वर्ष है।

किसी अर्धसंवाहक समाकलित परिपथ, अवयव, किसी ट्रांजिस्टर का ले–आउट व अवयवों को जोड़ने वाले तारों के इस्तेमाल का तरीका जिसका किसी भी तरीके से उल्लेख किया हो, ले–आउट डिजाइन में शामिल है। विद्युत से चलने वाले यंत्रों में लगे परिपथ अथवा ट्रांजिस्टर, जो तारों के माध्यम से एक–दूसरे से जुड़े होते हैं, इन्हें ही अर्धसंवाहक समाकलित परिपथ कहा जाता है। पंजीकृत ले–आउट को 10 वर्ष तक संरक्षण प्राप्त है।

हालांकि ट्रिप्स समझौता नई पौध की किस्म को अलग से कोई बौद्धिक संरक्षण अधिकार प्रदान नहीं करता है परंतु सदस्य देशों की यह जिम्मेदारी है कि वे नई पौध की नई किस्म के संदर्भ में पेटेंट, स्वयं बनाए गए नियम अथवा दोनों के गठजोड़ के माध्यम से इसे संरक्षण दें। भारत में इसे संरक्षण देने के लिए अलग से कानून बनाया गया है जो किसानों को भी संरक्षण प्रदान करता है।

अंतर्राष्ट्रीय नियमों के अनुसार संरक्षण प्राप्त करने के लिए पौध की किस्म का अनूठा, पृथक, स्थायी व एक समान होना आवश्यक है। भारत में नई व मौजूदा दोनों किस्मों का पंजीकरण कराया जा सकता है। वार्षिक फसल

के संदर्भ में संरक्षण की अवधि 15 वर्ष तथा पेड़ों व अंगूर की बेल के मामले में 18 वर्ष है। किसान के अधिकारों में बचत, उपयोग, बीजारोपण, विनिमय, उत्पादन अथवा बीज या पौध की बिक्री व हिस्सा करना शामिल है। मगर वह संरक्षित किस्म के ब्रांडेड बीजों को बेच नहीं सकता।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था का बदलता स्वरूप एवं बौद्धिक संपदा अधिकार

यह तो स्वतः सिद्ध है कि आज आईपीआर राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। काफी हद तक औद्योगिक विकास आईपीआर पर निर्भर करता है। यहां तक कि भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप भी ईंटों व मोर्टार से ज्ञान की अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो रहा है। बौद्धिक अधिकार इस नई अर्थव्यवस्था के पहिए हैं। बौद्धिक संपदा अधिकार एक वास्तविकता है और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास के लिए इसके बेहतर इस्तेमाल को समझने की आवश्यकता है। बौद्धिक संपदा अधिकारों को राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अच्छी पहचान मिली है पर ग्रामीण अर्थव्यवस्था में इसकी जरूरत को अभी इतना महत्व नहीं दिया गया है।

कई विधियों जैसे डिजिटल तकनीक, सूचना प्रौद्योगिकी के पर्दापण का ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर खासा प्रभाव पड़ा है। इसका एक उदाहरण सामान्य रूप से प्रयोग किया जाने वाला शब्द 'ग्लोबल विलेज' है। आश्चर्यजनक रूप से नई अर्थव्यवस्था का रूप शहरी की बजाय ग्रामीण है। यह कल्पना वास्तविक मौलिक दूरियों के बावजूद वस्तुओं, स्थानों व इससे जुड़े लोगों की नजदीकियों को सूचित करती है। पुराने समय के मुकाबले आज स्थान का उतना महत्व नहीं रह गया है। इसने बहुत से मामलों में ग्रामीण अपंगता को दूर किया है। आज गांवों व ग्रामीण क्षेत्रों से कई नई विश्वस्तरीय औद्योगिक इकाइयां शुरू की जा सकती हैं बशर्ते वहां सम्प्रेषण के साधन जैसे टेलीफोन व इंटरनेट उपलब्ध हों। आज देहाती इलाकों में छोटे उद्यम भी हैं। सॉफ्टवेयर विकास व छपाई के उद्यम ग्रामीण इलाकों में आसानी से स्थापित किए जा सकते हैं। आईपीआर के संदर्भ में देखा जाए तो यह उद्यम बहुत संवेदनशील होते हैं। शुरुआती स्तर से ही किसी भी प्रकार के उद्यम, चाहे वे छोटे, बड़े अथवा मध्यम आकार के हों, की स्थापना में भी बौद्धिक संपदा से संबंधित मुद्दों को महत्व देना होता है। आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक व ग्रामीण विकास के क्षेत्र में आईपीआर की जटिल संरचना को समझने के लिए हमें ग्रामीण विकास में आईपीआर के मुद्दों को विभिन्न कोणों से देखना चाहिए।

बौद्धिक संपदा कानून और ग्रामीण विकास

ग्रामीण परिवेश में आईपीआर की आवश्यकता व इस्तेमाल को पूरी तरह से कानूनी दृष्टिकोण से देखा जा सकता है। आईपीआर की अनदेखी करना गंभीर परिणामों को बुलावा दे सकता है। आज आईपीआर को लागू करने व उस पर नजर रखने की मशीनरी उपलब्ध है। आईपीआर के महत्व व इसकी पहुंच का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि कोई भी छोटे से छोटा उद्योगपति अथवा किसान इस बात का पूरा ख्याल रखता है कि गलती से भी किसी आईपीआर का उल्लंघन न हो। यह बात विशेष रूप से ग्रामीण इलाकों में स्थित छोटे दुकानदारों व फुटकर विक्रेताओं पर भी लागू होती है। उन्हें वस्तुओं की बिक्री अथवा संग्रहण करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे वस्तुएं जाली न हों। ऐसी वस्तुओं की बिक्री यहां तक कि उनके प्रदर्शन से भी व्यवसायी को गंभीर परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं।

कोरपोरेट जगत में आईपीआर का सृजन गहन अनुप्रयोग का स्रोत है। कुछ मामलों को छोड़कर जहां भी बड़ी मात्रा में पूंजी का निवेश हो, इसकी आवश्यकता पड़ती है। अधिकतर साहित्यिक, कलात्मक व संगीत से संबंधित कार्य में बड़ी मात्रा में पूंजी की जरूरत नहीं होती उदाहरण के लिए एक व्यक्ति सुंदर दृश्य की तस्वीर उतारकर कॉपीराइट कार्य का सृजन कर सकता है। सॉफ्टवेयर के निर्माण में भी पूंजी की कुछ खास आवश्यकता नहीं होती है। यहां तक की पेटेंट के मामले में भी सभी आविष्कारों में भारी निवेश की जरूरत नहीं होती है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था महत्वपूर्ण बौद्धिक संपदा का सृजन कर आईपीआर के संरक्षण कानूनों से अच्छा लाभ कमा सकती है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम लाभ लेने के लिए बौद्धिक संपदा का न्यायिक इस्तेमाल भी किया जा सकता है। कई बार अज्ञानता की वजह से लोग अपने अधिकार, पृथक चिन्ह, हस्तशिल्प, रचना, साहित्यिक व कलात्मक कार्य के संबंध में बौद्धिक अधिकारों का दावा नहीं करते और वित्तीय लाभों से वंचित रह जाते हैं। सीमित ज्ञान के चलते लोग व्यवसायियों को व्यवसाय की दृष्टि से महत्वपूर्ण पारंपरिक ज्ञान व सांस्कृतिक आनुवांशिकी दे देते हैं और व्यवसायी बहुत ही कम लागत से उस ज्ञान का शोषण करते हैं।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था क्षेत्र और आईपीआर संरक्षण

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में आईपीआर की भूमिका को क्षेत्रों के नजरिए से भी देखा जा सकता है क्योंकि आईपीआर की भूमिका क्षेत्रों के हिसाब से अलग–अलग है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था आज भी कृषि आधारित है मगर वैश्वीकरण के चलते कृषि भी प्रतियोगिता से अछूती नहीं रह सकती है। प्रतियोगिता में रहने के लिए खेती में बेहतर बीज, उत्तम खाद, कीटनाशक, कटाई व अन्य कार्यों के वैज्ञानिक विकास की जरूरत है। वर्तमान में हुई वैज्ञानिक प्रगति को देखते हुए किसानों को नई तकनीकों का इस्तेमाल करना होगा, अगर उन्हें लाभकारी खेती करनी है तो। जाहिर–सी बात है कि ये तकनीकें भी पेटेंट के अधिकार क्षेत्र अथवा बौद्धिक संपदा अधिकारों से संरक्षित होती हैं जैसे पौध की किस्म का संरक्षण। जेनेटिक अभियांत्रिकी ने विश्व के कई भागों में कृषि में क्रांति ला दी है। प्रयोगशालाओं में विकसित की गईं नई किस्मों का प्रयोग कृषि के अलावा बागवानी व रेशम कीट पालन में भी किया जा रहा है। पशु समुदाय प्रबंधन, मत्स्य–पालन व डेयरी उत्पादन भी कृषि से जुड़े हुए हैं। बड़ी मात्रा में ग्रामीण क्षेत्रों में मांस, मछली, अंडों व दूध का उत्पादन होता है। इन क्षेत्रों में आर्थिक लाभ को बढ़ाने के लिए बौद्धिक संपदा अधिकारों जैसे व्यापार चिन्ह, पेटेंट के साथ–साथ नई तकनीकों का इस्तेमाल, वाणिज्यीकरण व नवीनीकरण तीन महत्वपूर्ण कदम हैं। आईपीआर कुछ विशेष अधिकारों के बल पर उत्पादक के लिए बाजार शक्तियों को पैदा करता है। ग्रामीण विकास के क्षेत्र में आईपीआर महत्वपूर्ण तत्व बन जाता है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था भी विभिन्न तरीकों से पेटेंट कराने योग्य आविष्कारों का सृजन करती

है। चूंकि कृषि और उससे संबंधित कार्य ग्रामीण क्षेत्रों से संबंध रखते हैं इसलिए नए आविष्कारों जैसे कीटनाशक, उर्वरक, नए किस्म के बीज, रोपण करने आदि की नई तकनीकों का परीक्षण देहाती इलाकों में ही होना चाहिए। शहरी प्रयोगशालाओं में काम करने वाले नहीं, इस कार्य में पहले से संलग्न लोग, जो पहले से विकसित नए उपकरणों व तकनीकी समस्याओं का समाधान स्वयं करते आए हैं, पेटेंट कराने में सक्षम हैं। इस प्रकार ग्रामीण अर्थव्यवस्था आईपीआर संपदा के सृजन में साझेदार बन जाती है।

उत्पाद व बिजली क्षेत्र की भी ग्रामीण अर्थव्यवस्था में मौजूदगी है। पर्यावरण को ध्यान में रखकर कई उत्पादक गतिविधियां शहरों से ग्रामीण इलाकों में ले जाई जा रही हैं। पत्थर की ज्यादातर खदानें देहाती इलाकों में ही हैं। जलविद्युत परियोजनाएं व ज्यादातर वैकल्पिक विद्युत परियोजनाओं का गांवों में ही होना जरूरी है। ये उद्योग व परियोजनाएं उन मशीनों व तकनीकों पर निर्भर हैं, जो आईपीआर के दायरे में आती हैं।

छोटे उद्योगों के लिए ग्रामीण इलाके घर बनते जा रहे हैं। लकड़ी, फर्नीचर, जूट, प्लाईवुड आदि से संबंधित तमाम उद्योग ग्रामीण इलाकों में ही स्थित हैं। यहां तक कि लघु उद्योगों को भी बौद्धिक संपदा व गुणवत्ता के प्रति जागरूक होना पड़ता है। उन्हें भी प्रतियोगिता में बने रहने की जरूरत है जिसके लिए नई तकनीकों का इस्तेमाल लाजमी हो जाता है। लघु उद्योग भी अपनी वस्तुओं को दूसरों से पृथक करने के लिए पृथक चिन्हों का उपयोग करते हैं और ट्रेडमार्क कानून उन्हें सर्वोत्तम बौद्धिक संपदा संरक्षण प्रदान करता है। उनके कई उत्पाद अपनी आकर्षक रचना की वजह से बाजार में पैठ बना लेते हैं जिन्हें डिजाइन कानून के तहत संरक्षण प्राप्त है। ग्रामीण इलाकों में सेवा क्षेत्र भी अपनी जगह बना रहा है। संपर्क सुविधाएं बढ़ने और कम लागत के चलते कई गतिविधियां खासकर सेवा क्षेत्र का रुख ग्रामीण इलाकों की ओर हो गया है। अपने ट्रेडमार्क का पंजीकरण करा सेवाओं को भी सुरक्षा प्रदान की जा सकती है। संप्रेक्षण जाल व डिजीटल तकनीक के चलते अब सेवा क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण बौद्धिक संपदा मौजूद है। इन्हें कॉपीराइट के तहत संरक्षण प्राप्त है।

अधिकार आधारित सोच या पक्ष

इस मुद्दे को विभिन्न अधिकारों के नजरिए से भी देखा जा सकता है। वैश्विक बाजार में कृषि व छोटे उद्योगों को सक्षम बनाने के लिए पेटेंट प्राप्त व पेटेंटयोग्य आविष्कारों का खुलकर प्रयोग आवश्यक हो गया है। साथ ही ग्रामीण अर्थव्यवस्था भी पेटेंट करने योग्य आविष्कार कर सकती है विशेषकर ऐसे आविष्कार जिनमें निम्न आर्थिक स्रोतों की आवश्यकता हो। कार्यक्षेत्र में किए गए प्रयोगों व कच्चा माल प्रदान कर नई बौद्धिक संपदा का आविष्कार अभी ग्रामीण अर्थव्यवस्था से काफी दूर है। ट्रेडमार्क भी ऐसी ही बौद्धिक संपदा है जिसका ग्रामीण अर्थव्यवस्था में बड़े पैमाने पर उपयोग किया जाता है। बड़े बाजारों, दुकानों आदि में प्रदर्शन के साथ ब्राडेंड वस्तुओं के उद्भव ने ग्रामीण इलाकों के छोटे दुकानदारों, फुटकर विक्रेताओं, फेरीवालों के लिए यह जरूरी कर दिया है कि वह जिन वस्तुओं का विक्रय अथवा संग्रहण करते हैं, उनसे किसी भी रूप में ट्रेडमार्क के नियमों का उल्लंघन न होता हो। पृथक ट्रेडमार्क को अपनाकर उसके इस्तेमाल से छोटे उद्यमी अपनी वस्तुओं को दूसरों के द्वारा गैर–अधिकृत उपयोग से बचा सकते हैं। हर उत्पाद की अपनी पृथक गुणवत्ता होती है। यह कहना गलत होगा कि केवल बड़े पैमाने पर होने वाले उत्पादन को ही ट्रेडमार्क के संरक्षण की जरूरत है। 'अमूल' इस तथ्य का बेहतर उदाहरण है कि कैसे एक ग्रामीण उत्पाद ने बाजार में अपनी उपस्थिति और पहचान बनाई और अपने नाम को गुणवत्ता के ब्रांड के रूप में स्थापित किया।

हस्तशिल्प उत्पादन की बिक्री आसानी से ट्रेडमार्क के तहत की जा सकती है। इससे ग्राहक गुणवत्ता के प्रति आश्वस्त हो जाता है। ग्रामीण इलाकों में भारी मात्रा में कॉपीराइट का इस्तेमाल व सृजन होता है। कॉपीराइट के तहत सभी प्रकार के लेख, कलात्मक व संगीत कार्यों को संरक्षण मिलता है। इनका भी ग्रामीण इलाकों में बहुतायत में प्रयोग होता है। देहाती दुनिया के द्वारा साहित्य व संगीत का सृजन अथवा स्वामित्व किया जाता है। पुस्तक के लेखन में शहरीपन की जरूरत नहीं होती है। इसकी बजाय इन सृजनात्मक प्रयासों में ग्रामीण क्षेत्रों की व्यवस्था ज्यादा अनुकूल होती है। यही बात संगीत व कलात्मक कार्यों जैसे मूर्तिकला व चित्रकला पर भी लागू होती है। कम लागत की वजह से सॉफ्टवेयर सृजन ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए आदर्श उत्पाद है। भौगोलिक लक्षण सामान्यतः ग्रामीण क्षेत्रों में ही स्थित हैं। नागपुर संतरा, बासमती चावल, आगरे का पेठा, कांचीवरम सिल्क भौगोलिक लक्षणों के कुछ उदाहरण हैं। अपने भौगोलिक स्थल की वजह से इन उत्पादों को दूसरों से अलग कर देखा जाता है। इन वस्तुओं के वास्तविक उत्पादक दूसरों को इन नामों का इस्तेमाल करने से रोककर लाभ अर्जित करते हैं। भारतीय भौगोलिक लक्षण कानून के तहत हस्तशिल्प को भी संरक्षण प्राप्त है जिसका उत्पादन विशेषतः भारतीय ग्रामीणों द्वारा ही किया जाता है।

प्रदर्शनकर्ता का अधिकार किसी ग्रामीण प्रदर्शनकर्ता व कलाकार को फायदा दिला सकता है। कलाकार व गायक गांवों के अभिन्न अंग हैं। ग्रामीण कलाकारों की कला का प्रसारण व रिकार्डिंग आज सामान्य सी बात है। इसी कला का प्रदर्शन करने वाले का अधिकार उसके प्रदर्शन की अनाधिकृत रिकार्डिंग को रोकने की शक्ति प्रदान करता है। इस प्रकार वह मोलभाव कर इसका लाभ उठा सकता है। भारतीय कानून में प्रदर्शनकर्ता की परिभाषा में न केवल अभिनेता, गायक, संगीतकार व नृत्यकर्ता बल्कि कलाबाजी करने वाले, सपेरा, मदारी आदि को भी शामिल किया गया है। संक्षेप में, इसके तहत उन सभी लोगों को, जो गांव देहात में दूसरों का मनोरंजन करते हैं, को इस संदर्भ में अधिकार प्राप्त हैं।

संबंधित क्षेत्र

हमें यह स्वीकार करना होगा कि ग्रामीण क्षेत्रों के ज्ञान का एक बड़ा हिस्सा आज भी बौद्धिक संपदा अधिकारों के दायरे से बाहर है विशेषतः पारंपरिक ज्ञान व लोककथाएं। जागरूकता की कमी के कारण लोग उस हिस्से से भी वंचित रह जाते हैं जो मौजूदा प्रणाली में भी उनका है। लगभग सभी देशों में बौद्धिक संपदा अधिकारों के संदर्भ में निजी व सार्वजनिक हित के अधिकारों के बीच सामंजस्य स्थापित किया जाता है। बौद्धिक संपदा अधिकार ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। इसलिए निजी एवं सार्वजनिक हित के अधिकारों के बीच सामंजस्य

स्थापित करते समय ग्रामीण परिवेश को भी ध्यान में रखा जाता है। ऐसा विशेषकर इसलिए है क्योंकि नए अधिकारों, मदों व मौजूदा अधिकारों के नए विश्लेषण ने इन अधिकारों के दायरे को और बढ़ा दिया है।

ग्रामीण इलाके पारंपरिक ज्ञान तथा लोककथाओं के खजाने हैं। फिलहाल वे समुदाय, जो इस पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण व विकास कर रहे हैं, इससे बहुत कम तथा कई मामलों में व्यावसायिक रूप से कुछ भी प्राप्त नहीं करते। जब तक यह ज्ञान समुदाय के संरक्षण में रहता है तब तक कुछ खास फर्क नहीं पड़ता, लेकिन डिजीटल तकनीक के उद्भव के चलते कारपोरेट जगत इसका शोषण करने लगा है। यह कई तरीकों से होता है। कई ऐसे उदाहरण हैं जिनमें पारंपरिक ज्ञान को नए सांचे में ढाल उसे नई खोज का नाम देकर पेटेंट हासिल कर लिया गया है। यह विशेषकर औषधियों व पौधों की चिकित्सीय गुणवत्ता के क्षेत्र में हुआ है। ऐसे ज्ञान पर पश्चिम देशों में आसानी से पेटेंट हासिल कर लिया जाता है। अधिकारियों को इस बात की जानकारी ही नहीं होती कि यह भारतीय पारंपरिक ज्ञान का ही अंग है। परिणामस्वरूप पेटेंट की जांच करने वाले उनके दावे को पुराने ज्ञान के होने के आधार पर अस्वीकार नहीं कर पाते। शोषण करने का दूसरा तरीका पारंपरिक ज्ञान को विकसित करना है। मौजूदा ज्ञान को विकसित करने का अधिकार हर व्यक्ति के पास होता है। ज्यादातर मामलों में इस विकास का स्तर बहुत ऊंचा नहीं होता। सामान्यतः इस प्रकार के छोटे सुधार पेटेंट प्राप्त करने के लायक नहीं होते बशर्ते पेटेंट अधिकारी के पास इस बात की जानकारी हो। कई बार आंकड़ों के उपलब्ध न होने की वजह से ऐसे छोटे सुधार भी पेटेंट प्राप्त कर लेते हैं। शोषण का तीसरा तरीका मौजूदा पारंपरिक ज्ञान पर शोध करना है। वैसे ज्यादातर लोग यह महसूस करते हैं कि अगर उनके पारंपरिक ज्ञान का व्यावसायिक इस्तेमाल किया जा रहा है तो उन्हें भी इसका हिस्सा मिलना चाहिए।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पारंपरिक ज्ञान के दुष्प्रयोग व शोषण को रोकने के प्रयास किए गए हैं। पारंपरिक ज्ञान डिजीटल लाइब्रेरी इस क्षेत्र में किया गया एक प्रयास है जिसके द्वारा पेटेंट अधिकारियों को भारतीय ज्ञान की सूचना प्रदान की गई है ताकि जरूरत पड़ने पर वे इसकी जांच पड़ताल उपलब्ध तथ्यों से कर सकें। अब संबंधित समुदायों को लाभ देने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं। इसके पीछे अवधारणा यह है कि इन समुदायों ने अपने संरक्षित ज्ञान का कभी भी व्यावसायिक इस्तेमाल नहीं किया जैसाकि पेटेंटधारी बड़ी फर्में व यहां तक कि व्यक्ति करते हैं। इसीलिए व्यावसायिक शोषण की दशा में यह उनका मानवाधिकार बन जाता है। केरल स्थित ट्रॉपिकल बोटेनिकल गार्डन एंड रिसर्च इंस्टिट्यूट ने दक्षिणी केरल की जनजाति कानी को 'आरोग्य पाचा' नामक औषधि के लिए, उस औषधि से बनी दवाई 'जीवनी' की बिक्री से प्राप्त लाभ का 50 प्रतिशत हिस्सा देने के लिए मॉडल तैयार किया है। इस औषधि में थकान को हटाने के गुण हैं और यही औषधि संस्थान के शोध का आधार बनी थी।

लोककथाओं के अखाड़े में पेटेंट की जगह कॉपीराइट ले लेता है। लोकसाहित्य, लोकनृत्य का प्रकाशन कॉपीराइट के दायरे में आता है। जिन लोगों की पहुंच से यह दूर है, वहां प्रकाशन के जरिए इसे पहुंचा दिया जाता है। कई बार तो इन लोगों को पता ही नहीं चलता और अगर पता चल भी जाता है तो वह यह नहीं जानते कि अब आगे क्या करना है। यह भी एक समस्या है क्योंकि लोककथाओं को आईपीआर के तहत कोई संरक्षण प्राप्त नहीं है। सामान्यतः समुदायों की शिकायत दो प्रकार की होती है। पहली शिकायत सार्वजनिक वस्तु के निजीकरण से तथा दूसरी लोककथाओं के गलत इस्तेमाल की होती है। यह बात विशेषकर संगीत, कला, भजन व साहित्य से जुड़े धार्मिक मामलों पर लागू होती है। ऐसे शोषण व दुरुपयोग को रोकने के लिए आवश्यक बौद्धिक संपदा संरक्षण की जरूरत है। ग्रामीण सांस्कृतिक आनुवांशिकी के संयोजित दोहन से ग्रामीण इलाकों की संस्कृति व अर्थव्यवस्था को लाभ पहुंचेगा।

बौद्धिक संपदा को मजबूती प्रदान करने वाला एक अन्य अधिकार है किसानों का अधिकार। किसान पुराने बीजों और जींसों का ही इस्तेमाल करते हैं। इसे कृषि का एक सामान्य हिस्सा माना जाता है जिसे किसी संरक्षण की आवश्यकता नहीं है। किसानों द्वारा दो किस्मों को मिलाकर या किसी अन्य तरीके से तैयार की गई पौध सभी के इस्तेमाल के लिए होती है। कृषि के क्षेत्र में कॉरपोरेट जगत के पदार्पण तथा पौध की किस्म के संरक्षण के लिए लागू किए गए कानून चाहे वह पेटेंट हो अथवा आपस में बनाए गए नियम उनका ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर खासा प्रभाव पड़ा है। इस क्षेत्र में जिन मुद्दों पर विचार किया जाता है, उनमें यह भी शामिल हैं कि संरक्षित व विकसित की गई पौध आनुवांशिकी में किसानों की हिस्सेदारी को कैसे पहचाना व संरक्षित किया जाए। अपनी फसल के बीजों को बगैर किसी की अनुमति, दोबारा इस्तेमाल करना भी जरूरी है क्योंकि आज बाजार में संरक्षित बीजों के संदर्भ में भी बौद्धिक संपदा अधिकार लाया गया है।

ग्रामीण व अर्धशहरी इलाकों में छोटे उद्यमियों तथा तकनीशियनों द्वारा किए गए तकनीकी सुधार व आविष्कारों को भी बौद्धिक संपदा अधिकारों के विस्तार में शामिल किया जा सकता है। यह सामान्यतः आवश्यकतानुसार तकनीकों के स्थानीय इस्तेमाल के लिए किए जाते हैं। ये सुधार साधारणतः उस स्तर के नहीं होते हैं, जिन्हें पेटेंट के योग्य माना जाए। मगर स्वयं बनाए नियमों के आधार पर इन्हें सुरक्षा प्रदान की जा सकती है। इससे ये मॉडल ग्रामीण अर्थव्यवस्था को और लाभान्वित कर सकेंगे।

निष्कर्ष

ग्रामीण क्षेत्रों में की जाने वाली ऐसी विभिन्न क्रियाओं तथा गतिविधियों का व्यवसायीकरण करना जरूरी है जिनका बौद्धिक संपदा के संदर्भ में महत्व है। सामान्यतः कुछ अपवादों जैसे शिक्षा, शोध आदि को छोड़कर बौद्धिक संपदा का शोषण करने के लिए अनुमति की जरूरत होती है और अनुमति प्राप्त करने के लिए भुगतान करना होता है। इस प्रकार से किसी भी बौद्धिक संपदा कानून द्वारा संरक्षित सेवाओं, वस्तुओं व आविष्कारों का बहिर्गमन संभव होगा। साथ ही, इन संपदाओं का उपयोग करने की अनुमति लेने के लिए बाहरी व्यक्तियों द्वारा भुगतान किया जाएगा और इस प्रकार ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अंतर्गमन होगा। इस प्रकार का लेन–देन जितना अधिक होगा, उतना ही अर्थव्यवस्था का विस्तार होगा। ❑

(अनुवाद)

संचार प्रौद्योगिकी

गांवों की ओर बढ़ते कदम

जगनारायण

आज आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, केरल एवं दक्षिण भारत के सुदूर ग्रामीण अंचलों में सूचना प्रोद्यौगिकीय सुविधाओं के कारण ग्रामीण गतिविधियों और विकास प्रक्रिया को नया आयाम और गति मिली है। आवश्यकता इस बात की है कि इन साधनों को देश के पिछड़े और 'बीमारू' राज्यों में भी पहुंचाया जाए, जिससे इन क्षेत्रों के ग्रामवासी भी विकसित देशों के गांवों की बराबरी कर सकें।

भारत जैसे विकासशील देश के गांवों की तरक्की में आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी की उपयोगिता अत्यंत महत्वपूर्ण है। भौगोलिक जटिलताओं, संसाधनों के अभाव और संपर्क साधनों की कमी से जूझते भारत के गांव आधुनिक सुविधाओं तथा ज्ञान–विज्ञान में पिछड़े होने के कारण दुनिया के विकसित देशों के गांवों से सुविधा और जानकारी के मामलों में काफी पीछे हैं। संचार प्रौद्योगिकी के रूप में आज ऐसी संभावनाएं सुलभ हो गई हैं जिनके सहयोग से हम भारतीय गांवों को अधुनातन जानकारी, ज्ञान–विज्ञान की सूचनाओं को आसानी से उपलब्ध कराकर एक क्रांतिकारी आयाम प्रदान कर सकते हैं।

इसमें दो राय नहीं है कि भारतीय अर्थव्यवस्था को सूचना प्रौद्योगिकी क्रांति ने एक नया आयाम दिया है। इस दिशा में संचार क्रांति के महानायक बिल गेट्स का तो मानना है कि भारत सूचना प्रौद्योगिकी की दृष्टि से दुनिया की महाशक्ति बन गया है। ऐसे में सूचना प्रौद्योगिकी की इस क्रांतिकारी लहर से भारतीयों के मुख्य पेशे (कृषि) से जुड़े हुए गावों में रहने वाले देश के 70 प्रतिशत लोग अछूते रहें, यह कतई उचित नहीं है। पूंजी एवं संसाधनों की कमी वाले इस क्षेत्र के लोगों को ज्ञान पर आधारित अर्थव्यवस्था के विकासपरक माध्यमों से लाभ प्राप्ति का पूरा–पूरा मौका उपलब्ध कराया जाना चाहिए ताकि भारत के गांवों की आर्थिक स्थिति में गुणात्मक सुधार हो सके। इस दिशा में जो संभावनाएं दिखती हैं उनमें से कुछ का विवरण निम्नवत इस लेख में दिया जा रहा है।

संभावनाएं

भौगोलिक जटिलताओं से युक्त भारत के दूरस्थ गांव जनसंचार एवं सूचना के मामले में आज भी काफी पिछड़े हैं। हिमालय की जटिल जलवायु और भौगोलिक स्थिति के क्षेत्रों, दूरदराज के वनांचलों एवं राजस्थान के अभावग्रस्त मरुस्थलीय इलाकों के संचार साधनों से रहित गांवों में आज भी सड़कों, बिजली एवं अन्य आधारभूत सुविधाओं का सर्वथा अभाव है, जिनके कारण यहां पहुंचने के लिए कई–कई दिन पैदल चलना पड़ता है। अक्सर सूचनाएं और समाचार यहां काफी देर बाद पहुंच पाते हैं। दूरदराज के ऐसे गांवों में आधुनिक ज्ञान–विज्ञान और विकास की लौ ले जाने के साथ ही दुनिया के अन्य विकसित भागों की गतिविधियों से जोड़ने का कार्य सूचना प्रौद्योगिकी के साधनों द्वारा न्यूनतम व्यय और कम साधनों में आसानी से उपलब्ध हो सकता है। आज आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, केरल एवं दक्षिण भारत के सुदूर ग्रामीण अंचलों में सूचना प्रौद्योगिकीय सुविधाओं के कारण ग्रामीण गतिविधियों और विकास प्रक्रिया को नया आयाम और गति मिली है। आवश्यकता इस बात की है कि इन साधनों को देश के पिछड़े और 'बीमारू' राज्यों में भी पहुंचाया जाए, जिससे इन क्षेत्रों के ग्रामवासी भी विकसित देशों के गांवों की बराबरी कर सकें।

साधनरहित भारतीय गांवों में सौर ऊर्जा से प्राप्त बिजली से 'विलेज साइबर' केंद्रों की स्थापना कर जहां हम सूचना प्रदान करने वाले आपरेटरों के अलावा सौर ऊर्जा उपकरणों के रखरखाव, मरम्मत और संचालन के क्षेत्र में रोजगार की संभावनाएं पैदा कर सकते हैं, वहीं ग्राम विकास के लिए कई साधन भी उपलब्ध करा सकते हैं।

विभिन्न सूचना तथ्यों की उपलब्धता

आज गांवों के युवाओं और छात्रों के पास आधुनिक तथ्यों एवं अध्ययन सामग्रियों का सर्वथा अभाव है जिसकी पूर्ति विभिन्न स्थानीय वेबसाइटों पर उपलब्ध तथ्यों को बड़ी–बड़ी लाइब्रेरियों में जाए बिना कम खर्च में गांवों में ही प्राप्त करना सूचना प्रौद्योगिकीय साधनों द्वारा संभव हो गया है। इससे ग्रामीण युवाओं के धन, श्रम और समय तीनों की बचत होती है और गांवों में ही बैठकर वे नवीनतम ज्ञान–विज्ञान से संबंधित जानकारी एवं सूचनाएं प्राप्त कर शैक्षणिक और प्रतियोगी परीक्षाओं

की तैयारी कर सकते हैं।

देश विदेश की प्रायः सभी स्तरीय पत्र–पत्रिकाएं आज वेबसाइटों पर उपलब्ध हैं जिन्हें ग्रामीण साइबर केन्द्रों पर देखा–पढ़ा जा सकता है। नौकरियों, छात्रवृत्तियों, उच्च अध्ययन तथा विशिष्ट शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश संबंधी सूचनाओं को प्राप्त कर शहरी छात्रों की बराबरी की जा सकती है।

दूरस्थ सूचना संप्रेषण : गांवों के लोग देश–विदेश एवं सरकारी सेवाओं तथा व्यावसायिक कार्यों के लिए अक्सर गांवों से दूर जाते रहते हैं। आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी के विकास के चलते आज यह संभव हो गया है कि इस तरह के लोग अपने परिवारजनों से परंपरागत साधनों की तुलना में आधुनिक संचार साधनों के माध्यम से त्वरित और आसानी से संपर्क कर सकें और सूचनाओं का आदान–प्रदान कर सकें। इस प्रौद्योगिकी के विकास से अब डाकियों के पत्रों और टेलीफोन के बिना भी हजारों किलोमीटर दूर से त्वरित संपर्क तथा सूचनाएं प्राप्त करना संभव हो गया है।

व्यावसायिक एवं सरकारी शिकायतों का शीघ्र निपटारा

आधुनिक संचार साधनों से ग्रामीण लोगों के लिए व्यावसायिक एवं प्रशासनिक शिकायत करना आसान हो गया है। ग्रामीण अपनी असुविधाओं से संबंधित सूचनाएं संबद्ध पक्षों से शीघ्रतापूर्वक प्रमाणसहित प्रेषित कर अपनी समस्याओं का शीघ्र समाधान पाने की स्थिति में आ गए हैं।

गांवों में चिकित्सकीय सुविधाओं की उपलब्धता : संचार अभियांत्रिकी की सक्रियता से आज दुनिया के विकसित देशों सहित दक्षिण भारत के ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों को इलाज एवं विशेषज्ञ चिकित्सकों से संपर्क की सुविधाएं उपलब्ध हो गई हैं। **इन साधनों के माध्यम से रोगी के हाल–चाल तथा स्थिति की वेबसाइट की वाइस फाइल में मरीज की आवाज को नोट करने के बाद रोगग्रस्त भाग को डिजिटल कैमरे के माध्यम से विशेषज्ञों को प्रेषित करके उपचार निर्धारित करने के अलावा आवश्यकता पड़ने पर ऐसे रोगियों को इन्हीं के आधार पर पंजीकृत कर नियत समय पर अस्पताल में लाकर आपरेशन आदि भी संपन्न किए जाते हैं।** इससे दूरस्थ गांवों के रोगियों की परेशानी बहुत कम हो जाती हैं और विशेषज्ञों की देख–रेख में सुविधापूर्वक इलाज हो जाता है।

कृषि क्षेत्र में संचार अभियांत्रिकी

आज भी कृषि भारत का प्रमुख उद्योग और सर्वाधिक लोगों के रोजगार का साधन है। विज्ञान और तकनीकी ने वर्तमान में कृषि के क्षेत्र में ढेर सारे परिवर्तन किए हैं। विशेष गुणों और पोषक तत्वों से युक्त भारी उत्पादन देने वाली नई फसलें, अधिक दूध और मांस देने वाले पशुओं की प्रजातियां, हानिरहित फसल, रोग निवारक प्रविधि तथा पादप एवं फसल रोग निवारक कार्य के साथ ही सहायक लाभकारी उद्यम, मछलीपालन आदि के साथ सिंचाई के लाभकारी नए तरीके सरीखे अनेक उपयोगी साधनों को वैज्ञानिकों द्वारा उपलब्ध कराया जा रहा है।

लेकिन दुर्भाग्य है कि भारतीय कृषि का प्रसार पक्ष अत्यंत प्रभावहीन है जिसके कारण भारतीय कृषक प्रयोगशालाओं में विकसित नई खोजों और जानकारियों से वंचित रहकर पुराने और घिसे–पिटे तौर–तरीकों और साधनों की खेती करने को बाध्य हैं। ऐसे में उन्हें खेती से वह लाभ नहीं मिल पाता है जिसकी अपेक्षा आज के समय में की जाती है। **कृषि प्रसार पक्ष के इन अभावों को आज की आधुनिक संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से पूरा कर भारतीय कृषि को समुन्नत और अधिक लाभकारी बनाया जा सकता है। कृषि के क्षेत्र में आविष्कृत उपयोगी साधनों की क्रियाओं–प्रतिक्रियाओं से कृषकों और ग्रामवासियों को जोड़ने म यह क्रांतिकारी संचारीय तकनीक किसानों और प्रयोगशालाओं के बीच सेतु का कार्य कर सकती है।** इससे कृषि प्रसार के पुराने अभावों का निराकरण कर हम अभावग्रस्त भारतीय कृषकों को आधुनिक खोजों से रूबरू करा सकते हैं जिससे खेती में लाभांश बढ़ाने के साथ ही कृषकों के जीवन–स्तर को भी उठाया जा सकता है। यह कह सकते हैं कि इस आधुनिक और क्रांतिकारी संचार तकनीकी के माध्यम से कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्र के लोगों के जीवन–स्तर में गुणात्मक सुधार के सार्थक प्रयास हो सकते हैं।

कृषि एवं ग्रामीण पर्यावरण संरक्षण में : बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने शक्तिशाली प्रचार–तंत्र और आकर्षक विज्ञापनों के माध्यम से भारतीय कृषकों के दिलोदिमाग में रासायनिक कीटनाशकों के प्रति मोह भर दिया है। इसके साथ ही रासायनिक खादों के बेतहाशा प्रयोग से भारतीय किसान फसलें तो भारी मात्रा में ले रहा है लेकिन गुणवत्ता के अभावों और कृषि उत्पादों में कीटनाशकों एवं रासायनिक खादों के माध्यम से पहुंचे विषाक्त और हानिप्रद रसायनों की उपस्थिति के कारण विश्व बाजार में उसके उत्पाद पिट रहे हैं। पिछले दिनों जर्मनी में अनुमन्य मात्रा से अधिक कीटनाशकीय रसायनों की उपस्थिति के कारण चाय की पत्तियों की वापसी, लखनऊ से इंग्लैंड को गई आम की खेप की वापसी एवं दुनिया के कई देशों से कृषि उत्पादों की वापसी इस बात का प्रमाण है कि भारतीय कृषकों में एकीकृत कीटनाशकीय फसल प्रबधंन और कृषि क्षेत्र में प्रदूषण नियंत्रण के ज्ञान का सर्वथा अभाव है।

हम जो भी अनाज, फल और सब्जी आज उपयोग में ला रहे हैं उनमें से शायद ही कोई ऐसी मिले जिसमें अनुमन्य मात्रा के अनूकुल कीटनाशकीय विष की उपस्थिति पाई गई है। इसके कारण देश की जनता के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव तो पड़ ही रहा है हमारे जल संसाधन – नदी, तालाब, कुंए, और भूगर्भिक जलभंडार भी प्रदूषित होकर भयावह स्थिति तक पहुंच रहे हैं और गांवों में अनेक तरह की बीमारियां पैदा हो रही हैं। **अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम श्रेष्ठतम और हानिरहित कीट नियंत्रण और प्रबंधन तकनीक किसानों को उपलब्ध कराएं, जिससे कृषि क्षेत्र में हो रहे प्रदूषण के प्रति किसानों और ग्रामीणों में चेतना आए।** इस कार्य में दूरसंचार प्रौद्योगिकी द्वारा समुचित संसाधन और तथ्यों की व्यापकता एवं वितरण सुनिश्चित कर सार्थक और लाभकारी परिणाम पाए जा सकते हैं।

पंचायतीराज व्यवस्था का सशक्तिकरण

पंचायतीराज के रूप में ग्रामीण स्वशासन प्रक्रिया को मजबूत बनाने के साथ ही ग्रामवासियों को आपसी और सामूहिक समस्याओं के स्थानीय स्तर पर निस्तारण के लिए पंचायत प्रतिनिधियों, पदाधिकारियों सहित ग्रामीण जनता को भी इस स्वशासन प्रणाली के विभिन्न पक्षों यथा आर्थिक, प्रशासनिक, न्यायिक एवं जल, जंगल और जमीन के अधिकारों के साथ ही विकास के लिए स्थानीय स्तर पर उपलब्ध ग्रामीण, आर्थिक पैकेज एवं अन्य साधनों सहित राज्य द्वारा उपलब्ध होने वाले सभी तरह के रासायनिक संसाधनों, स्रोतों, न्यायिक तथा प्रशासनिक क्षेत्राधिकारों के विषय में पूरी जानकारी होनी चाहिए। **पंचायतों द्वारा स्थानीय समस्याओं के निराकरण, ग्रामीणों के आपसी विवादों का निस्तारण, ग्राम विकास की योजनाओं का प्रभावकारी संचालन, स्थानीय लोक प्रशासनिक ढांचे का निर्माण आदि पक्षों की व्यापक जानकारी उपलब्ध कराने में जनसंचार प्रौद्योगिकी की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है जिससे ग्रामीणजनों को आपसी विवादों एवं स्थानीय समस्याओं के निस्तारण के लिए न्यायालय और प्रशासनिक कार्यालयों के चक्कर लगाने में श्रम, समय और धन का अपव्यय नहीं करना पड़ेगा।** इसके साथ ही सामूहिक समस्याओं के निस्तारण और ग्राम विकास के लिए संसाधनों की जानकारी उपलब्ध हो जाने पर उनके उपयोग से ग्राम विकास में स्थानीय पक्षों की भूमिका बढ़ जाएगी। इससे ग्राम विकास प्रक्रिया की गतिशीलता बढ़ेगी और पंचायतों के सशक्तिकरण से उनका महत्व और उपयोगिता दोनों ही बढ़ जाएंगी।

प्रशासनिक कार्यों में गतिशीलता

17 अक्तूबर, 2000 को भारत सरकार ने सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम पारित करके इस विधा को पूर्ण सरकारी मान्यता प्रदान कर प्रशासनिक कार्यों में इसके प्रयोग का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। अब डिजिटल हस्ताक्षर और कंप्यूटर मैमोरी में दर्ज तथ्यों और सूचनाओं को प्रामाणिक और वैधानिक मान्यता मिल गई है। इलेक्ट्रानिक प्रशासन संबंधी कार्ययोजना को अमली जामा पहनाने और समन्वित करने के ध्येय से 15 अगस्त, 2000 को इलेक्ट्रानिक निकेतन नई दिल्ली में ई–गवर्नेंस केंद्र की स्थापना की गई है। यह केंद्र सरकार के विभागों व राज्य सरकारों को इस दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करेगा।

भारत जैसे देश में ई–प्रशासन के 'मॉडल को परिवर्तन' के रूप में देखा जा रहा है। सरकार भी इसे एक ऐसे हथियार के रूप में प्रयुक्त करना चाह रही है जो जनता के जीवन में स्थायी और प्रभावशाली सुधार लाए। प्रशासन को साधारण जनता के पक्ष में अधिक से अधिक जवाबदेह बनाना एवं जनसामान्य की समस्याओं को न्यूनतम स्तर तक ले जाना ही ई–प्रशासन को लागू किए जाने का मुख्य उद्देश्य है।

आज भारतीय प्रशासनिक और सरकारी व्यवस्था बहुस्तरीय, उलझी हुई और लंबी प्रक्रियाओं से ग्रस्त है जिससे उपजे भ्रष्टाचार और अव्यवस्था के चलते जनता का विश्वास उठता जा रहा है और जनता में इसके प्रति कुंठा और अविश्वास व्याप्त है। अब जनता इससे छुटकारा पाना चाहती है। विशेषज्ञ इसके विकल्प के रूप में ई–प्रशासन को ही प्रस्तावित कर रहे हैं। वे इस नई व्यवस्था के प्रयोग से निम्न सुधारों की बात करते हैं :

- ई–प्रशासन में कागजी कार्यवाही बहुत कम हो जाएगी; फाइलों के टेबलों पर घूमने की प्रक्रिया में अंकुश लगेगा; कागजी कार्यवाही में कमी आएगी जिससे समय की बचत और कार्यों का निस्तारण त्वरित होगा। संबंधित पक्ष कार्य की प्रगति के बारे में आसानी से जान सकेगा। प्रशासनिक कार्यों में पारदर्शिता आएगी जिससे भ्रष्टाचार पर अंकुश लग सकेगा।
- कार्यालय प्रमुख दफ्तर से संबंधित हर जानकारी अपने डेस्कटॉप पर प्राप्त कर सकेगा। उसे अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को बार–बार बुलाने की जरूरत नहीं पड़ेगी।
- सरकारी कार्यालयों के आटोमेशन से अनावश्यक कर्मचारियों की संख्या में कटौती होगी; कार्यपालक वर्ग की संख्या बढ़ेगी; बाबू वर्ग की संख्या घटेगी जिससे ग्रामीणों के कार्य में तेजी आएगी। खसरा, खतौनी और अन्य विवरण तथा भू–अभिलेखों की प्राप्ति आसान हो जाएगी तथा उसमें होने वाले हेरफेर को बिना कार्यालय आए देखा जा सकेगा तथा भू–अभिलेखों में हेराफेरी आसान नहीं होगी।
- नियंत्रक प्राधिकारी का अपने मातहतों पर नियंत्रण बढ़ जाएगा और अधीनस्थ कर्मचारियों की जिम्मेवारी स्पष्ट और सुनिश्चित होगी; उनकी ढिलाई और लापरवाही तुरंत पकड़ी जा सकेगी।
- मुख्यालय से क्षेत्रीय कार्यालय का सीधा संपर्क हो जाएगा। टेलीकांफ्रेंसिंग (वीडियो कांफ्रेंसिंग) बैठकें आयोजित कर कार्य जल्दी निपटाए जा सकेंगे।
- ग्रामीण सूचना केंद्रों (साइबर केंद्र) से ही निश्चित शुल्क देकर शिकायत, ड्राइविंग लाइसेंस, वाहन परमिट, राशन कार्ड तथा पुलिस प्रशासन को आवेदन और शिकायत भेजे जा सकेंगे। उनके प्रिंट आउट भी प्राप्त किए जा सकेंगे।

ध्यान देने योग्य तथ्य

सूचना और संचार प्रौद्योगिकी क्रांति से ग्रामीण क्षेत्रों को लाभ तभी मिल सकता है, जबकि संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित रहे। इस तकनीकी द्वारा ग्रामीण जनसामान्य को लाभ मिल सके, इसके लिए निम्नलिखित तत्वों का होना जरूरी है :

(1) स्थानीय स्तर पर अलग–अलग विभागों से संबंधित वेबसाइटें बनाई जाएं।

(2) उनकी भाषा, चित्र, स्केच और रेखांचित्र स्थानीय परिवेश के हों।

(3) कृषि के क्षेत्र में होने वाले शोधों, परिवर्तनों उपलब्धियों की सूचनाओं को नियमित रूप से क्षेत्रीय भाषा और परिवेश में स्थानीय वेबसाइटों पर उपलब्ध कराया जाए।

(4) मौसम के बदलावों और मंडियों की स्थिति, यथा कृषि उत्पादों की आमद, स्टॉक और रेट को वेबसाइटों पर हमेशा उपलब्ध रखा जाए।

(5) रेलगाड़ियों एवं अन्य यातायातीय साधनों से संबंधित सूचनाओं के नियमित परिवर्तनों

एवं अन्य हालात तथा साधनों से संबंधित विषय सामग्री को त्वरित लोड कराने की व्यवस्था हो।

(6) क्षेत्र के व्यापारिक तथ्यों, यथा वस्तुओं की उपलब्धि के स्थल, कार्य, समय, स्थिति आदि की नियमित सूचनाओं की त्वरित उपलब्धि की व्यवस्था हो।

(7) शासन–प्रशासन के स्थानीय, प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय स्तर पर अधिकारियों की उपलब्धता एवं संपर्क के विवरण क्षेत्रीय भाषा में स्थानीय (सूचना माध्यमों) वेबसाइटों पर उपलब्ध कराने की व्यवस्था हो।

(8) लोक आयुक्त, उच्च न्यायालय, उच्चतम न्यायालय के कार्य करने के तरीकों से संबंधित सूचना सामग्रियों की उपलब्धता हो।

इसके अतिरिक्त अन्य व सभी तथ्य जिनका ग्रामीण जीवन से सीधा संबंध और सरोकार हो, उनकी स्थानीय वेबसाइटों पर क्षेत्रीय भाषा में उपलब्धि की व्यवस्था होनी चाहिए।

- इस संचार एवं सूचना क्रांति के लाभ को ग्रामीणों तक पहुंचाने के लिए जरूरी है कि गांवों में सूचना केंद्रों (साइबर केंद्रों) का पर्याप्त संख्या में निर्माण हो। इन केंद्रों के संचालन के लिए गांव के ही शिक्षित बेरोजगार नौजवानों को प्रशिक्षित कर उन्हें बैंकों से सस्ते ब्याज और छूट सहित कर्ज दिए जाने चाहिए।
- समाजसेवी संगठनों, संस्थाओं और को–आपरेटिव सोसाइटियों द्वारा इन केंद्रों का निर्माण और संचालन हो।
- गांवों के इन सूचना केंद्रों के लिए बनी कमेटियों और इकाइयों में उपकरणों की मरम्मत और रखरखाव तथा वैकल्पिक और परंपरागत ऊर्जा से संबंधित लोगों को भी शामिल करना अनिवार्य हो ताकि उपकरणों के रखरखाव, मरम्मत तथा विद्युत आपूर्ति के मामले में ये केंद्र आत्मनिर्भर रहें।
- इन केंद्र संचालक समूहों की बैठकों में नवीनतम सूचनाओं, जानकारियों और परिवर्तनों पर अनिवार्य रूप से चर्चा की व्यवस्था रहे।

विसंगतियां

इस अधुनातन संचार और जनसंप्रेषण तकनीक के लाभों का ग्राफ जहां बहुत ऊंचा है वहीं इसमें समस्याएं और विसंगतियां भी हैं जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं :

(1) साइबर अपराध : समाज विरोधी तत्वों द्वारा सूचना व्यवस्था में गड़बड़ी पैदा करके बिजली, पानी की सप्लाई, परिवहन और बैंकिंग सुविधाओं जैसी आवश्यक सेवाओं में बड़ी आसानी से अव्यवस्था पैदा की जा सकती है जिसके चलते ग्रामीणों को इसकी खामी का शिकार बनाया जा सकता है।

धोखाधड़ी, इलेक्ट्रानिक रिकार्डों में फेरबदल, साइबर स्पेस की स्थायी समस्याएं हैं। इलेक्ट्रानिक माध्यम अल्पकालिक हैं, इन्हें प्रोग्रामिंग का प्रारभिक ज्ञान रखने वाला कोई भी व्यक्ति ई–मेल हेडर बदलकर किसी प्रेषक और प्रेषित दोनों के लिए समस्या खड़ी कर सकता है।

तकनीकों में बायोमेट्रिक टोकन प्रयोग होते हैं जोकि रेटिना स्केन और डिजिटल फिंगर प्रिंट जैसे विशिष्ट शारीरिक गुणधर्मों पर आधारित होते हैं। किंतु ये सभी केवल तकनीकें हैं, जो यह सुनिश्चित करती हैं कि केवल उन लोगों को पहुंच प्रदान की जाए जिसके शारीरिक गुणधर्म पहले से कंप्यूटर में जमा किए गए बायोमेट्रिक टोकनों से मेल खाते हों। इससे इलेक्ट्रानिक रिकार्ड की प्रामाणिकता सुनिश्चित नहीं होती। इसके अलावा प्रत्येक कंप्यूटर में एक डिजिटल कैमरा या कोई अन्य ऐसी ही विशेष व्यवस्था होनी चाहिए जिससे वह उपयोगकर्ता के बायोमेट्रिक टोकन को पढ़ सके, लेकिन ऐसा होने पर वह व्यवस्था महंगी और सबकी पहुंच के परे हो जाएगी।

(2) कानूनी समस्याएं : इस 'हाईटेक' तकनीक ने हमारे विधिवेत्ताओं के सम्मुख भी अनेक पेचीदगियां खड़ी की हैं जिनसे अनेक तरह की कानूनी समस्याएं आ रही हैं। डिजिटल हस्ताक्षर इलेक्ट्रानिक हस्ताक्षर का ही एक रूप है, लेकिन प्रत्येक डिजिटल हस्ताक्षर इलेक्ट्रानिक नहीं होता। इलेक्ट्रानिक हस्ताक्षर के अंत में दिया जाने वाला कोई नाम या कोई चिन्ह भी हो सकता है। सभी ई–मेल पैकेट व सभी संदेशों में हस्ताक्षर के रूप में ई–मेल भेजने वालों के नाम अपने आप ही छाप देते हैं। इसका उद्देश्य ई–मेल भेजते समय हर बार उपयोगकर्ता का नाम और पता टाइप करने की मेहनत और समय को बचाना होता है। सामान्य इलेक्ट्रानिक हस्ताक्षर इलेक्ट्रानिक रिकार्ड या संदेश भेजने वाले की पहचान की सत्यता को सुनिश्चित नहीं कर पाते जिसके कारण कई तरह की समस्याएं उठती हैं।

आज की जो सबसे बड़ी कानूनी समस्या है, वह है इंटरनेट में उपयोगकर्ता की पहचान। इंटरनेट किसी को भी अपनी पहचान बताए बिना अधिक से अधिक उपयोगकर्ता जुटाने की अनुमति देता है। यह स्थिति इस तथ्य से और भी जटिल हो जाती है कि छद्म नामों की समस्या साइबर स्पेस में अत्यंत व्यापक रूप ले चुकी है। साइबर स्पेस में अंकीय अवतारों के कारण लोग ऐसा आचरण करने से नहीं चूकते जो पूरी तरह से नैतिक नहीं होते। इस तरह के साइबर अपराधी को खोजना तथा पकड़ना और अपराध निर्धारित कर उसे सजा देना एक जटिलतम कार्य है।

भारतीय साक्ष्य कानून 1972 में मौखिक और लिखित साक्ष्यों को मान्यता दी गई है। दस्तावेजी साक्ष्य दो प्रकार के होते हैं। मूल और प्रति। प्रत्येक इलेक्ट्रानिक दस्तावेज नकल (कापी) और मूल दोनों ही होता है। यह एक जटिलतम कानूनी पहलू है जिससे कई तरह की वैधानिक समस्याएं आती हैं।

कुल मिलाकर इस अद्युनातन सूचना और तकनीकी में कई जटिलताएं हैं जिनके निराकरण के उपाय खोजना अभी शेष है। इनके परिवर्तनीय चरित्र के कारण इनकी सत्यता और प्रामाणिकता अक्सर संदिग्ध रहती है। अतः इनका प्रयोग सावधानीपूर्वक सक्षम लोगों के सहयोग से ही करना चाहिए और इन तत्वों पर हमेशा पैनी नजर रखते हुए इन्हें जांचते–परखते भी रहना चाहिए अन्यथा परिणाम प्रतिकूलता की संभावना हमेशा बनी रहती है। ❑

दुकान संख्या 20
श्री विश्वनाथ मंदिर, काशी हिंदू विश्वविद्यालय,
वाराणसी–221005, उत्तर प्रदेश

पॉलीथिन प्रदूषण स्वास्थ्य के लिए खतरा

डा. उमेश चंद्र अग्रवाल

आजकल हमारी रोजमर्रा की जिंदगी में प्लास्टिक की थैलियों, डिब्बों और बोतलों के बढ़ते प्रयोग ने जहां अभी तक शहरी क्षेत्रों में सीवर लाइनों को अवरुद्ध कर वातावरण को दुर्गंधपूर्ण बनाने, अनेक पशुओं को मौत के मुंह में धकेलने और मानव स्वास्थ्य पर गंभीर बीमारियों के रूप में घातक प्रभाव छोड़ने में अहम भूमिका निभाई है वहीं अब हमारे गांव भी तेजी से इसकी चपेट में आने लगे हैं। गांवों में यदि इसी प्रकार इनका प्रयोग बढ़ता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब गांवों में पॉलीथिन के कहर से हमारी बहुत सारी कृषियोग्य भूमि अनुपजाऊ भूमि में तब्दील होने लगेगी, अनेक पालतू पशु इसके कारण मौत के मुंह में समाएंगे और गांव के लोग इससे होने वाली अनेक गंभीर बीमारियों से अपने को बचाने में असमर्थ और असहाय ही पाएंगे।

उल्लेखनीय है कि पॉलीथिन और प्लास्टिक केवल उपयोग करने या उसके बाद ही प्रदूषण नहीं फैलाते बल्कि इनकी फैक्ट्रियों में काम करने वाले लोग तथा आसपास का वातावरण भी इसके घातक प्रभाव से ग्रसित हो जाते हैं। प्लास्टिक फैक्ट्रियों में काम करने वाले मजदूरों को चर्म रोगों, श्वसन तंत्र संबंधी रोगों, यकृत, फेफड़े तथा त्वचा कैंसर जैसे भयानक रोगों से ग्रसित करने के साथ–साथ यह संपूर्ण पर्यावरण के लिए घातक सिद्ध हो रहा है।

प्लास्टिक बनाने और नष्ट करने के लिए जलाने से भी अनेक विषैले तत्व जैसे, फिनाल, फासजीन, हाइड्रोजन–साइनाइड, हाइड्रोजन–फ्लोराइड तथा नाइट्रोजन के अनेक तत्व निकलते हैं। ये सभी मानव के श्वसन तंत्र के लिए अति हानिकारक हैं। इनसे खांसी, सांस लेने में दिक्कत, आंखों में जलन, चक्कर आना, मांसपेशियां शिथिल होना तथा हृदय गति बढ़ने जैसी बीमारियां पैदा होती हैं और

इनका गंभीर दुष्प्रभाव मनुष्य के स्वास्थ्य व पर्यावरण दोनों पर बहुत अधिक पड़ता है। ऐसे दुष्प्रभावी तत्वों के बावजूद आजकल उपभोक्ताओं में रोजमर्रा की जरूरतों में प्लास्टिक इतनी गहरी जड़ें जमा चुका है कि इसके प्रयोग को पूर्णतया रोकना मुश्किल है और कुछ क्षेत्र जैसे बिजली, इलेक्ट्रानिक्स, दूरसंचार, आटोमोबाइल आदि तो ऐसे हैं जहां इसका प्रयोग कोई अन्य विकल्प नहीं होने के कारण अपरिहार्य लगने लगा है।

अपनी कुछ खास खूबियों जैसे हल्के, सस्ते, टिकाऊ और आकर्षक होने के कारण पिछले कुछ वर्षों में ही प्लास्टिक का प्रयोग विभिन्न क्षेत्रों में इतनी तेजी से बढ़ा है कि आज दैनिक कार्यों में प्रयोग आने वाली छोटी–छोटी चीजों से लेकर बड़ी–बड़ी और कीमती मशीनों के कलपुर्जे तक प्लास्टिक से बनाए जाने लगे हैं। तभी विश्वभर में 100 मिलियन टन के करीब प्लास्टिक का उत्पादन प्रतिवर्ष हो रहा है और भारत एशिया में प्लास्टिक का चौथा सबसे बड़ा आयातक देश है।

हमारे यहां हाल के कुछ वर्षों में प्लास्टिक के प्रयोग में बढ़ोतरी हुई है। भारत में प्लास्टिक उद्योग वर्तमान में 15 प्रतिशत की दर से वृद्धि कर रहा है। देश में पिछले एक दशक में प्लास्टिक के उत्पादन और प्रयोग में लगभग पांच गुना वृद्धि होकर वर्तमान में इसकी खपत 15 करोड़ टन से भी अधिक हो गई है। पूरे देश में प्लास्टिक निर्माण से संबंधित कई लाख प्लांट स्थापित हैं। हाल ही में किए गए एक अध्ययन के अनुसार प्लास्टिक की कुल खपत में 40 प्रतिशत का प्रयोग पॉलीथिन की थैलियों के रूप में होता है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा हाल ही में जारी आंकड़ों के अनुसार भारत में पांच वर्ष पूर्व प्रति व्यक्ति प्लास्टिक की खपत 1.4 किलोग्राम थी जो आज 4 किलोग्राम से भी अधिक हो गई है।

आज जीवन के हर क्षेत्र में प्लास्टिक का बोलबाला है। हम रोज सुबह उठकर प्लास्टिक से बना हुआ टूथब्रश प्रयोग करते हैं। हमारे घरों में लोहे की बाल्टियों की जगह अब प्लास्टिक की बाल्टियों ने ले ली है। लकड़ी के फर्नीचर की जगह अब प्लास्टिक का दिखने में खूबसूरत फर्नीचर बहुतायत से प्रयोग हो रहा है। खाने के लिए प्लास्टिक से निर्मित मेलेमाइन की क्राकरी का प्रयोग बढ़ता जा

रहा है। प्लास्टिक की बोतलों में मिनरल वाटर बहुतायत से प्रचलन में आ रहा है। दवाओं की पैकिंग, सेलाइन मशीनों तथा अन्य प्रयोग में आने वाले अनेक कलपुर्जे आज प्लास्टिक के बने इस्तेमाल हो रहे हैं। राशन, फल, सब्जी, अचार, जूस, दूध, दही, आटा, तेल और घी जैसी रोजमर्रा के प्रयोग की सभी खाद्य सामग्री आज प्लास्टिक की थैलियों में आने लगी है। इसके इस अंधाधुंध प्रयोग ने मानव स्वास्थ्य के खतरे तथा निष्प्रयोज्य थैलियों आदि को नष्ट करने हेतु अपनाए जा रहे तरीकों ने पर्यावरण प्रदूषण संबंधी कुछ जटिलताएं पैदा की हैं जिनके निराकरण हेतु तुरंत उपाय ढूंढकर प्रभावी कदम उठाने होंगे।

प्लास्टिक, जिससे पॉलीथिन बैग बनाए जाते हैं, एक जटिल पालीमर है जिसमें फास्फेट, कंपोराइड, सल्फेट, पराबैंगनी तत्व, प्लास्टिसाइजर, सटैबीलाइजर रंग, मोनोमर तथा ए.डी.टी. बस आदि का सम्मिश्रण रहता है। प्लास्टिक मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं– एक थरमोस्टेटिंग तथा दूसरे थर्मोप्लास्टिक/थर्मोस्टेटिंग। प्लास्टिक गर्म होने पर विघटित होता है जबकि थर्मोप्लास्टिक गर्म होने पर विघटित नहीं होता। **वैज्ञानिकों के अनुसार प्लास्टिक को जमीन में दबा देने पर इसके नष्ट होने में लगभग 250 वर्ष तक लग जाते हैं और इसके जलाने से नष्ट करने पर इससे अति विध्वंसकारी गैसें निकलती हैं जो मानव स्वास्थ्य के साथ–साथ पेड़–पौधे और पशु–पक्षियों पर भी दूषित प्रभाव छोड़ती हैं। प्लास्टिक निर्माण में प्रयुक्त होने वाले अवयवों व उनमें प्रयुक्त होने वाले कार्बनिक एवं अकार्बनिक रसायनों और उनमें प्रयोग होने वाले विषाक्त रंगों के कारण ये हर प्रकार से हानिकारक होते हैं।** प्लास्टिक के इन अवयवों का उनके उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य पर भी काफी दुष्प्रभाव पड़ता है। यदि प्लास्टिक निर्माण में सही रसायनों का प्रयोग उचित मात्रा और निर्धारित सीमा में नहीं किया गया तो अधिक तापमान, अम्लीय एवं क्षारीय अवस्था में उसके रासायनिक तत्व बाहर निकलकर उसमें रखी सामग्री में मिलकर उसे विषाक्त बना देते हैं।

पॉलीथिन/प्लास्टिक के प्रयोग से खतरे: प्लास्टिक, प्लास्टिक या पॉलीथिन बैग या डिब्बों अथवा बोतलों में विभिन्न खाद्य पदार्थों की पैकिंग करने और लाने–ले जाने के लिए इनका इस्तेमाल करने से खाद्य पदार्थों के प्रदूषित हो जाने से स्वास्थ्य को तो खतरा होता ही है, साथ ही प्रयोग के उपरांत इनको फेंक देने या नष्ट करने से भी पर्यावरण, मानव, भूमि, जलस्रोत तथा पशु–पक्षी, पेड़–पौधे, वनस्पति आदि सभी पर इनका अति हानिकारक प्रभाव होता है। सामान्य तौर पर इसके निम्नांकित दुष्प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं–

1. कूड़े–करकट, शाक–सब्जी के छिलकों और बेकार खाद्य पदार्थों को पॉलीथिन की थैलियों के साथ फेंके जाने से इन्हें गायों, सूअर, बंदर, कुत्ते आदि पशुओं द्वारा खा लिए जाने पर उनकी जान तक का खतरा रहता है क्योंकि ये उनकी आंतों में फंस जाती हैं और इससे पाचन संबंधी विकार होने के साथ–साथ पशुओं की मौत तक हो जाती है। पिछले 5–7 वर्षों में इनके कारण पशुओं की मौतों में बड़ी तेजी से वृद्धि हुई है।
2. पॉलीथिन बैग्स, प्लास्टिक की बोतल या डिब्बों को नष्ट करने के उद्देश्य से इसे जमीन में दबा देने से अथवा इनके किसी भी तरह खेतों में पहुंचकर मिट्टी में दब जाने से भूमि प्रदूषण होता है। भूमि के पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं। ऐसे स्थान पर कोई पौधा भी नहीं उग पाता और अन्ततः ये कृषियोग्य भूमि को बेकार बना देते हैं क्योंकि जमीन में इनके गलने में अनेक वर्ष लग जाते हैं। मिट्टी में इनके दबे होने के स्थान पर कोई भी पेड़–पौधे उग नहीं पाते हैं और उपजाऊ भूमि धीरे–धीरे बंजर होने लगती है।
3. जमीन में प्लास्टिक या पॉलीथिन दबा देने से उसके आसपास का सतही जल भी प्रदूषित हो जाता है क्योंकि इससे जमीन के अंदर जल में विषैले तत्व पहुंच जाते हैं और उसे प्रदूषित कर देते हैं।
4. इसे नष्ट करने के लिए पॉलिस्ट्रीन प्लास्टिक जलाने से क्लोरोफ्लोरो कार्बन बाहर आते हैं जो जीवनरक्षक ओजोन परत को नष्ट करते हैं। इससे पराबैंगनी किरणों के पृथ्वी तक पहुंचने के कारण कैंसर जैसी भयानक बीमारियां उत्पन्न हो सकती हैं।
5. रंगीन पॉलीथिन में हानिकारक रंगों का प्रयोग किया जाता है। इनमें तरल खाद्य पदार्थों जैसे दूध, दही, घी, पानी, जूस आदि में इनका रंग छूटकर मिल जाने से मानव स्वास्थ्य को गंभीर खतरा है और अनेक बीमारियों का कारण बन सकता है। वाशिंगटन स्थित नेशनल एन्वायरनमेंट ट्रस्ट द्वारा किए शोध निष्कर्षों के अनुसार खाद्य पदार्थों को पॉलीथिन की थैलियों में रखे जाने पर पॉलीथिन से एक विषैला रसायन (विस फिनाइल) निकलता है जो खाद्य पदार्थों को विषैला कर देता है।
6. विशेष रूप से सड़कों और कूड़े के ढेरों से एकत्रित की गई पॉलीथिन की थैलियों की प्रोसेसिंग के बाद दोबारा तैयार की गई थैलियों में लाई गई खाद्य सामग्री अधिक प्रदूषित हो जाती है जिससे मानव स्वास्थ्य पर घातक प्रभाव पड़ता है। यद्यपि ऐसी थैलियों का निर्माण, क्रय–विक्रय और प्रयोग को प्रतिबंधित कर दिया गया है लेकिन प्रतिबंध का कहीं भी कोई खास प्रभाव नजर नहीं आ रहा है।
7. नवीनतम शोध परिणामों से प्राप्त निष्कर्ष बताते हैं कि पॉलीथिन की थैलियों का इस्तेमाल लोगों को नपुंसक बना सकता है और साथ ही सेक्स संबंधी अन्य विकृतियां पैदा कर सकता है।
8. नदी और तालाबों में पॉलीथिन के थैले में रखकर फेंके गए पदार्थों के कारण पॉलीथिन के पानी के नीचे बैठ जाने पर जल में उगने वाली लिचिन, मांस आदि वनस्पतियां नष्ट भी हो जाती हैं तथा वहां पर और भी उग नहीं पातीं जिससे वहां इन वनस्पतियों पर निर्भर करने वाले जीव–जंतु नष्ट हो जाते हैं।
9. बहुतायत से प्रयोग में लाई जा रही पॉलीथिन की थैलियां नाले–नालियों तथा शहरी क्षेत्रों में सीवर लाइनों में पहुंचकर उनको अवरुद्ध कर देती हैं जिससे आजकल विशेष रूप से सभी बड़े नगरों में नालों और सीवर जाम की समस्याएं आम रूप से उत्पन्न हो रही हैं और वहां वातावरण प्रदूषण बढ़ रहा है।
10. पॉलीथिन में पाए जाने वाले कुछ घातक तत्व जैसे पॉलिविनायल क्लोराइड,

कैडमियम, जस्ता, लैड, मिथाइल, एक्रिलेमाइड, आक्टाइल, थैलेट कैंसर के अतिरिक्त **गुर्दे और फेफड़े संबंधी बीमारियों** के लिए विशेष रूप से उत्तरदायी होते हैं।

11. पॉलीथिन को जलाने पर हाइड्रोजन क्लोराइड, क्लोरीन और सल्फर–डाइ आक्साइड नामक खतरनाक गैसें निकलती हैं जिनसे दम घुटने का खतरा रहता है।
12. प्लास्टिक के जूते और इसी के अवयवों से बनने वाले पॉलिस्टर कपड़े पहनने से भी स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव होता है। इनके प्रयोग से अनेक प्रकार के चर्म रोग हो सकते हैं जिनका उपचार भी बहुत कठिन होता है।

नियंत्रण हेतु प्रभावी कदम : यद्यपि प्लास्टिक का नियंत्रित उत्पादन तथा उपयोग ही पर्यावरण सुरक्षा का एकमात्र उपाय है। इसके लिए सरकारी नीतियों के निर्माण के साथ व्यापक जन–सहभागिता भी जरूरी है। प्लास्टिक के उपयोग के खतरे और इसके सुरक्षात्मक उपयोग के संबंध में जन–सामान्य को समुचित जानकारी देने के लिए वृहद् स्तर पर प्रचार–प्रसार की भी महती आवश्यकता है। इसे जनांदोलन के रूप में चलाने के लिए सरकारी प्रचार–प्रसार माध्यमों का भरपूर उपयोग, पंचायतों और स्थानीय संस्थाओं की भागीदारी, स्वैच्छिक और गैर सरकारी संगठनों का सहयोग तथा विभिन्न स्तरों के शैक्षिक पाठ्यक्रमों में इससे संबंधित जानकारी का समावेश काफी मददगार हो सकता है। समय रहते ही यदि इस ओर ध्यान नहीं दिया गया तो इसके गंभीर परिणाम भुगतने पड़ेंगे। वास्तव में प्लास्टिक/पॉलीथिन के दुष्प्रभावों से मुक्ति पाने के दो प्रमुख रास्ते हैं– पहला यह कि इसके उत्पादन और प्रयोग पर पूर्ण रूप से प्रतिबंध लगाकर उसका अनुपालन सुनिश्चित किया जाए तथा दूसरे कदम के रूप में बायोफ्रेंडली अर्थात बायोडिग्रेडेविल प्लास्टिक को परंपरागत प्लास्टिक का प्रभावकारी विकल्प बनाकर उसके उपयोग को बढ़ा दिया जाए।

प्लास्टिक और पॉलीथिन पर प्रतिबंध के लिए समय–समय पर विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा भी सभी देशों को इनके दुष्प्रभावों से आगाह करते हुए इसके प्रयोग पर तुरंत प्रतिबंध लगाने को कहा जाता रहा है। हमारे देश में भी सरकार ने इस दिशा में पहल करते हुए पॉलीथिन के प्रयोग को कानून बनाकर प्रतिबंधित और नियंत्रित करने का प्रयास किया है। विशेष रूप से पॉलीथिन की रिसाइकिलिंग से बनी थैलियों के उपयोग पर पाबंदी लगाई गई है तथा इन थैलियों के निर्माण हेतु मानक निर्धारित किए गए हैं ताकि इनके उपयोग से मानव स्वास्थ्य पर कम से कम प्रतिकूल प्रभाव हो। **केंद्र सरकार के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा वर्ष 1999 में ही 'रिसाइकिल प्लास्टिक मैनुफैक्चर एंड यूसेज अधिनियम' पास किया गया जिसमें रिसाइकिल्ड प्लास्टिक से बनी थैली में खाने के लिए खाद्य पदार्थों का उपयोग निषिद्ध किया गया है।** भारतीय मानक ब्यूरो ने इसी क्रम में अन्य मामलों के अतिरिक्त रिसाइकिल प्लास्टिक से बैग बनाने के लिए पॉलीथिन की कम से कम मोटाई 20 माइक्रोन निर्धारित की है।

केंद्र सरकार द्वारा 4 जून, 2000 को जारी राज्यों को दिए गए निर्देशों के अनुरूप अधिकांश राज्य सरकारों तथा स्थानीय निकायों द्वारा अपने–अपने प्रशासित क्षेत्रों में पॉलीथिन बैग्स के उपयोग को प्रतिबंधित किया गया है लेकिन इन प्रतिबंधों पर समुचित रूप से अमल नहीं हो पा रहा है जो अत्यधिक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। इसलिए केंद्र और राज्य सरकारों, शहरी स्थानीय निकायों तथा त्रिस्तरीय पंचायतों द्वारा इस समस्या के निराकरण हेतु बिना देर किए इस संबंध में उपलब्ध कानून को प्रभावी रूप से क्रियान्वित करने के लिए समुचित कार्यवाही कर इसका कड़ाई से अनुपालन सुनिश्चित कराना अति आवश्यक है। बायोफ्रेंडली प्लास्टिक का निर्माण और उपयोग इस समस्या के समाधान का दूसरा विकल्प है जिसमें स्टार्च एवं कम घनत्व वाली पॉली– इथीलिन को मिलाकर पानी और मिट्टी में घुलनशील योग्य प्लास्टिक बनाकर उपयोग में लाया जाए। इस प्लास्टिक से बनी पॉलीथिन की विशेषता है कि यह मिट्टी में दबा देने से उससे नमी पाकर मिट्टी के अंदर ही गलने लगती है और मजबूती में भी यह खास कम नहीं है। हालांकि यह कीमत में कुछ अधिक है।

बायोफ्रेंडली/बायो डिग्रेडेबिल प्लास्टिक निर्माण के प्रयास : पिछले कुछ सालों से प्लास्टिक के बढ़ते कहर से छुटकारा पाने के लिए वैज्ञानिकों द्वारा नए–नए रास्ते तलाशे जा रहे हैं। इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है बायोफ्रेंडली अथवा बायोडिग्रेडेबल प्लास्टिक का विकास। इस प्रकार के प्लास्टिक के निर्माण में पेट्रोलियम पदार्थों का प्रयोग नहीं किया जाता। दिखने में और इस्तेमाल में यह आम प्लास्टिक के समान ही होता है। इसकी सबसे बड़ी खासियत है धरती में सहज ही घुल–मिल जाना। मूलतः बायोप्लास्टिक कृषि उत्पादों जैसे मक्का और आलू के स्टार्च से तैयार किए जाते हैं। पानी और ऊर्जा के संपर्क में आने पर ये आसानी से कार्बनिक पदार्थों में टूटकर मिट्टी में घुल जाते हैं। अभी तक स्टार्च से तैयार बायोप्लास्टिक की तीन किस्मों का निर्माण हुआ है। पॉलीइथाइलीन और पालीप्रोपीन से तैयार उसकी पहली किस्म में स्टार्च मात्र 5 से 20 प्रतिशत ही मौजूद था। कुछ खास परिस्थितियों में इस प्लास्टिक का स्टार्च पानी में घुल जाता था लेकिन पेट्रोलियम पदार्थों की बड़ी मात्रा यों ही रह जाती थी।

पहली पीढ़ी के बायोप्लास्टिक में सुधार करके वैज्ञानिकों द्वारा पहले से बेहतर नया प्लॉस्टिक तैयार किया गया। दूसरी पीढ़ी के इस बायोप्लास्टिक में स्टार्च के पालीमर गुणों को उपयोग में लाया गया। इस प्लास्टिक में स्टार्च की मात्रा 50 से 70 प्रतिशत तक ही रही। यानी अभी भी ऐसे प्लास्टिक का एक बड़ा भाग टूटकर नष्ट नहीं हो सकता था। विज्ञान की देन इस प्लास्टिक का सड़–गल कर नष्ट न होना पर्यावरण के साथ–साथ वैज्ञानिकों के लिए भी सिरदर्द बन गया। लगातार शोध के बाद फिर आया तीसरी पीढ़ी का बायोडिग्रेडेबल प्लास्टिक। इसे सही मायने में जैव अपघटन कहा जा सकता है क्योंकि इसमें सिंथेटिक पॉलीमर्स का जरा भी उपयोग नहीं किया गया है। यह न सिर्फ पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित है बल्कि सेहत पर भी दुष्प्रभाव नहीं डालता क्योंकि यह प्रकृति में सड़–गलकर पूरी तरह नष्ट हो सकता है। ऐसा प्लास्टिक अभी काफी महंगा है। पर्यावरण और स्वास्थ्य के प्रति सचेत होने के बावजूद जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा अधिक कीमत देकर इसे अपनाने को तैयार नहीं होगा।

प्लास्टिक टेक्नोलॉजीज नामक आस्ट्रेलियाई कंपनी ने इस समस्या का भी

निदान किया है। पिछले दिनों कंपनी ने एक ऐसा बायोप्लास्टिक तैयार किया है जो प्रचलित प्लास्टिक के समान ही सस्ता है। **मक्का के स्टार्च से तैयार इस प्लास्टिक ने आम प्लास्टिक से छुटकारा पाने के द्वार खोले हैं। यह बायोप्लास्टिक इस्तेमाल की दृष्टि से काफी टिकाऊ और सुरक्षित है। इसे उपयोग में लाने के बाद इससे निपटने का झंझट भी नहीं है। वजह, यह पानी में पूरी तरह घुलनशील है।** बायोप्लास्टिक 33 डिग्री फारेनहाइट पर और मिट्टी की नमी के संपर्क में आते ही गलने लगता है। हल्की–फुल्की बारिश में मात्र एक घंटे में ही यह घुलकर मिट्टी में मिल जाता है। फिर अगले कुछ हफ्तों के दौरान कार्बन डाइ आक्साइड और पानी में टूटकर पूरी तरह से गायब हो जाता है। प्लास्टिक कंपनी का दावा तो यहां तक है कि आप चाहें तो इस प्लास्टिक को खा भी सकते हैं। **बायोप्लास्टिक का पानी में घुलनशील होना जहां इसे पर्यावरण के अनुकूल बनाता है, वहीं इसका यही गुण इसकी सफलता पर प्रश्नचिन्ह भी लगाता है।** बायोप्लास्टिक की थैली में बाजार से सामान लिए आ रहा कोई व्यक्ति बारिश में फंस जाए तो थैली के साथ–साथ सारा का सारा सामान मिट्टी में मिल जाएगा। प्लास्टिक कंपनी पानी में आसानी से न घुलने वाले बायोप्लास्टिक का निर्माण भी कर रही है लेकिन बायोप्लास्टिक थैली की कीमत उसकी जल प्रतिरोधी क्षमता के हिसाब से बढ़ती जाएगी। ऐसे में लोग इसे कितना सुविधाजनक महसूस करेंगे, यह आने वाला समय ही बताएगा।

सुरक्षित उपयोग हेतु सावधानियां : पॉलीथिन एवं प्लास्टिक के प्रयोग को कानूनी तौर पर पूर्ण रूप से प्रतिबंधित किए जाने अथवा इसके कारगर विकल्प को व्यावहारिक स्वरूप प्राप्त होने में निश्चित रूप से अभी कुछ समय लगेगा। अतः तब तक के लिए इसके उपयोग में यदि कुछ सावधानियां बरती जा सकें तो इससे होने वाले घातक प्रभावों को कुछ कम अवश्य किया जा सकता है। इस हेतु निम्नांकित सावधानियां बरती जानी चाहिए :–

1. बाजार से पॉलीथिन की थैलियों में दही, अचार जैसे कोई अम्लीय पदार्थ नहीं लाने चाहिए। इससे ये पदार्थ दूषित हो जाते हैं और इनके उपयोग से विभिन्न प्रकार की बीमारियां उत्पन्न हो सकती हैं।
2. दही, अचार आदि पदार्थों को घरों में भी प्लास्टिक के जारों में नहीं रखना चाहिए क्योंकि इनके विषैले तत्व इन खाने के पदार्थों में मिलकर हमारे स्वास्थ्य को हानि पहुंचाते हैं।
3. बाजार से सामान लाने हेतु पॉलीथिन की जगह कागज के लिफाफे अथवा जूट या कपड़े के थैले, प्लास्टिक के कम और प्लेटों की जगह मिट्टी या पत्ते के दोने आदि ही उपयोग में लाने चाहिए। यथासंभव पॉलीथिन का उपयोग कम से कम किया जाना चाहिए।
4. पीने के पानी की बोतलों का उपयोग केवल पीने के लिए किया जाना चाहिए और इन बोतलों में तेल, सिरका, दूध, घी, जूस जैसे तरल पदार्थ नहीं रखने चाहिए क्योंकि इससे ये खाद्य पदार्थ प्रदूषित हो जाते हैं और कई प्रकार के रोग उत्पन्न कर सकते हैं।
5. पानी के लिए उपयोग की जाने वाली बोतलें विशेष रूप से बच्चों को दी जाने वाली प्लास्टिक की पानी की बोतलें अच्छे किस्म की ही ली जानी चाहिए। सस्ती और घटिया बोतलें स्वास्थ्य के लिए अधिक खतरनाक होती हैं।
6. प्लास्टिक/पॉलीथिन के कचरे को एक निर्धारित और सुरक्षित स्थान पर ही फेंका जाना चाहिए जिससे यह दूर तक नहीं फैले। विशेष रूप से इसे ऐसे स्थान पर डाला जाए जहां यह पशुओं की पहुंच से भी बाहर रहें और वे इसे खा नहीं पाएं।
7. पॉलीथिन की थैली आदि को कुंओं, तालाबों, नदियों आदि जल क्षेत्रों में नहीं फेंकना चाहिए। इससे इनका पानी प्रदूषित हो जाएगा और इसके उपयोग से अनेकानेक बीमारियां भी पनपेंगी। इससे पानी में रहने वाली मछलियां तथा अन्य मानवोपयोगी जीव भी बुरी तरह प्रभावित होते हैं।
8. प्लास्टिक के जूते भी यथासंभव प्रयोग नहीं करने चाहिए। यदि प्रयोग करने भी पड़ें तो अच्छी क्वालिटी के ही तथा कम समय के लिए ही उपयोग में लाने चाहिए क्योंकि ये हमें त्वचा संबंधी जटिल रोगों से ग्रसित कर सकते हैं।
9. अधिक गहरे रंग और दिखने में भद्दी पॉलीथिन के उपयोग से यथासंभव बचने का प्रयास करना चाहिए क्योंकि ये पुराने प्लास्टिक से रिसाइकिल करके अधिक हानिकारक रंगों का इस्तेमाल करके बनाई जाती हैं और अधिक हानिकारक होती हैं।
10. घरों में प्रयुक्त होने वाली प्लास्टिक की क्राकरी भले ही सुंदर, सस्ती और खूबसूरत लगे लेकिन उसको प्रयोग में नहीं लाना चाहिए क्योंकि इसके हानिकारक तत्व खाद्यपदार्थ के साथ हमारे शरीर में पहुंच जाते हैं और कई बीमारियों को जन्म देते हैं। अन्यत्र स्थानों पर भी इसके इस्तेमाल से बचना चाहिए।
11. पशुओं के गोबर आदि के साथ खाद के गड्ढों में प्लास्टिक/पॉलीथिन को नहीं डालना चाहिए। इससे यह खेतों में पहुंच जाएगी और खेत की उर्वराशक्ति को नष्ट कर उसे बंजर बना सकती है।
12. प्लास्टिक या पॉलीथिन बैग्स के कचरे को किसी भी दशा में जलाया नहीं जाना चाहिए। इसको जलाने से अति हानिकारक गैसें निकलती हैं जो मानव स्वास्थ्य पर अति प्रतिकूल प्रभाव छोड़ती हैं जिससे कई प्रकार के रोग हो सकते हैं।
13. किसी भी पदार्थ को पॉलीथिन में लाने पर यदि उसमें पॉलीथिन का थोड़ा भी रंग आ गया है तो उस पदार्थ को कदापि भी उपयोग में नहीं लाना चाहिए। इसका उपयोग स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा उत्पन्न कर सकता है और कई प्रकार की भयानक बीमारियां हो सकती हैं।

पॉलीथिन और प्लास्टिक के उपयोग में उपर्युक्त सावधानियों को बरतने से इसके कुप्रभावों को यद्यपि पूर्णरूप से समाप्त नहीं किया जा सकता और इन्हें केवल शीघ्रगामी उपायों के रूप में अपनाया जाना चाहिए। दूरगामी उपायों के रूप में सरकार द्वारा इसके निर्माण, स्टोर और उपयोग को पूर्णतया प्रतिबंधित कर मानव, पशु, जल, भूमि, वायु अर्थात संपूर्ण पर्यावरण को इसके घातक, विध्वंसकारी कलुषित कुप्रभावों से बचाना ही श्रेयस्कर होगा। ❑

17ए, इंसाफ नगर कालोनी
सेक्टर–10, इंदिरा नगर, लखनऊ–226016

पादप हार्मोन : किसानों के लिए बेहद उपयोगी

डा. प्रदीप कुमार मुखर्जी

पादप हार्मोनों पर अभी शोध चल रहे हैं। ये हार्मोन महंगे पड़ते हैं तभी वे इतने लोकप्रिय नहीं हो पाए हैं। भविष्य में वैज्ञानिक उनको संश्लेषित करने की अपेक्षाकृत सरल विधियां भी खोज सकते हैं। तब फल-फूल, सब्जियों, अनाज आदि की उत्पादकता और गुणवत्ता को पादप हार्मोनों के प्रयोग द्वारा इच्छानुसार नियंत्रित कर पाना और भी आसान हो जाएगा।

हार्मोन ग्रीक भाषा से लिया गया शब्द है जिसका अर्थ उत्तेजना पैदा करना है। शरीर की अंतःस्रावी (एंडोक्रास) ग्रंथियों से सूक्ष्म मात्रा में स्रावित होकर हार्मोन शरीर के विभिन्न क्रियाकलापों जैसे वृद्धि, पाचन, प्रजनन, चयापचय आदि को नियंत्रित करते हैं। मनुष्यों की तरह पौधों में भी हार्मोन उनकी वृद्धि एवं अनेक चयापचयी क्रियाओं का नियंत्रण करते हैं।

हार्मोनों का कृत्रिम रूप से भी उपयोग किया जाता है। पादप एवं कृषि वैज्ञानिकों ने फल–फूल, सब्जियों व अनाजों आदि की उत्पादकता और गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए पादप हार्मोनों का जादुई छड़ी के रूप में इस्तेमाल किया है। हार्मोन जैसे ही गुण रखने वाले अनेक रासायनिक यौगिकों को वैज्ञानिकों ने प्रयोगशाला में कृत्रिम रूप से संश्लेषित भी किया है। फल–सब्जियों और अनाजों आदि की उत्पादकता और गुणवत्ता को बढ़ाने के अलावा वैज्ञानिकों ने पादप हार्मोनों का प्रयोग फलों के स्वाद व आकार को बढ़ाने, उनको पकाने, उन्हें समय से पहले पेड़ से गिरने से रोकने तथा खरपतवार के उन्मूलन के लिए भी किया है।

प्रसंगवश बताना उचित होगा कि मवेशियों खासकर दुधारू पशुओं से कम समय के अंदर दूध प्राप्त करने के लिए भी आक्सीटासिन नामक हार्मोनयुक्त इंजेक्शनों का सहारा लिया जाता है लेकिन इस तरह हार्मोन इंजेक्शनों द्वारा प्राप्त किया गया दूध स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर डालता है। इससे न केवल दूध में पशुओं के रक्त व हड्डियों के अंश चले आते हैं बल्कि गर्भवती महिलाओं द्वारा ऐसे दूध के सेवन से पैदा होने वाले बच्चों में शारीरिक एवं मानसिक विकलांगता के लक्षण भी पैदा हो सकते हैं। अतः पशुओं को हार्मोन का इंजेक्शन लगाने में बड़ी सावधानी बरते जाने की आवश्यकता है। नहीं तो अवांछित तत्वों के मिल जाने से दूध स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है।

जहां पशुओं में कृत्रिम हार्मोनों के उपयोग से प्रतिकूल प्रभाव देखने को मिलते हैं वहीं पेड़–पौधों में हार्मोनों के प्रयोग से अनेक फायदे प्राप्त हो सकते हैं। पौधे भी अपने अंदर हार्मोनों का संश्लेषण अत्यंत सूक्ष्म मात्रा में ही करते हैं जो पौधों के अन्य अंगों में पहुंचकर वृद्धि व अनेक चयापचयी क्रियाओं को प्रभावित एवं नियंत्रित करते हैं।

एथिलीन एक पादप गैस हार्मोन है जो फलों को पकाने में कुदरती रूप से अपनी भूमिका निभाता है। फलों के अतिरिक्त इससे फूलों, पत्तियों व जड़ों में भी प्राकृतिक रूप से संश्लेषित एथिलीन के छिड़काव द्वारा परिपक्व कच्चे फलों को एक साथ पकाया जा सकता है। खासकर टमाटर व अंगूर पर एथिलीन के छिड़काव से वे जल्दी पकते हैं।

खरबूजा, तरबूज व कद्दू आदि का उत्पादन बढ़ाने में भी एथिलीन का प्रयोग किया जा सकता है। इसके लिए इनके अंकुरित बीजों से तीन या चार पत्तियां निकलने के बाद ही इन पर एथिलीन का छिड़काव कर देना चाहिए। इससे निकलने वाले मादा फूलों की संख्या में वृद्धि हो जाती है।

आक्सिन एक अति महत्वपूर्ण प्राकृतिक पादप हार्मोन है। ग्रीक भाषा से बने आक्सिन शब्द का अर्थ है वृद्धि करना। पादप वैज्ञानिकों ने कुछ ऐसे रासायनिक यौगिकों को प्रयोगशाला में संश्लेषित किया है जो आक्सिन हार्मोन की तरह ही कार्य करते हैं। इनमें से कुछ प्रमुख यौगिकों के नाम एल्फा नेपथेलीन एसीटिक एसिड, डाइक्लोरोफिनाक्सी एसीटिक एसिड, ट्राइक्लोरोफिनाक्सी एसीटिक एसिड आदि हैं।

जिबरेलिन भी एक महत्वपूर्ण पादप हार्मोन है जिसकी खोज जापान के कृषि वैज्ञानिकों ने की थी। जिबरैला नामक एक कवक (फफूंद) से एक वृद्धिकारक पदार्थ को विलग कर उन्होंने इसे जिबरेलिन या जिबरेलिक एसिड नाम दिया। इस पादप हार्मोन द्वारा जापान में धान के पौधों की लंबाई में कई गुना वृद्धि कर पाना संभव हो पाया था। प्राकृतिक रूप से यह हार्मोन सभी वर्ग के पौधों में पाया जाता है। अब तक इस पादप हार्मोन की लगभग साठ किस्मों की खोज की जा चुकी है जिन्हें जी ए 1, जी ए 2, जी ए 3, आदि नाम दिए गए हैं। इनमें से जी ए 3 ही अधिकांशतया पौधों में पाया जाता है। कृत्रिम रूप से भी जिबरेलिन को संश्लेषित किया गया है।

फलों के उत्पादन, स्वाद, आकार आदि को बढ़ाने तथा बीजरहित (सीडलैस) फलों के उत्पादन में आक्सिन व जिबरेलिन हार्मोनों के

महत्वपूर्ण उपयोग हैं। साधारणतया सेब तथा नाशपाती के पौधों में बौनी शाखाओं पर ही फल लगते हैं। लेकिन अगर इन पौधों के तनों के शीर्षस्थ भाग पर एल्का नेपथेलीन एसीटिक एसिड, जो कृत्रिम रूप से प्राप्त आक्सिन हार्मोन है, का छिड़काव कर दिया जाए तो लंबी बनने वाली शाखाएं बौनी हो जाती हैं। नतीजतन उन पर भी फल आने लगते हैं। इस तरह से फलों का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

अंगूर के फलों की संख्या, आकार व स्वाद को बढ़ाने के लिए जिबरेलिन का प्रयोग किया जाता है। इसी तरह कश्मीरी लाल सेब का आकार बढ़ाने के लिए उन पर प्रोमेलिव नामक हार्मोन का इस्तेमाल किया जाता है। आम के पौधों में अमूमन एक साल छोड़कर फल लगते हैं। लेकिन अगर साइकोसेल नामक हार्मोन का प्रयोग किया जाए तो इन पौधों में हर वर्ष फल आना शुरू हो जाते हैं।

बीजों की मौजूदगी फलों के मूल्य को निश्चित तौर पर कम करती है। दरअसल, पौधों में फलों एवं बीजों का विकास प्राकृतिक रूप से होने वाले परागन और निषेचन क्रिया के बाद होता है जिससे अंडाशय की भित्ति से फल और बीजांड से बीज बनते हैं। लेकिन अगर पुष्पन के समय परागन और निषेचन क्रिया से पहले पुष्प कलिकाओं से पुंकेसर निकालकर अंडाशय के ऊपरी भाग पर आक्सिन या जिबरेलिन हार्मोन का लेपन कर दिया जाए तो बीजों का बनना रूक जाता है और अंडाशय फल में बदल जाता है। आजकल प्रचलित बीजरहित फलों में अमरूद, पपीता, अंगूर आदि प्रमुख हैं।

सेब, संतरा, नाशपाती आदि कुछ फलों के पेड़ों से फल परिपक्व होने से पहले ही झड़ जाते हैं। इससे फल उत्पादकों को बहुत नुकसान उठाना पड़ता है। लेकिन अगर फलदार पेड़ों के ऊपर आक्सिन के एक खास सांद्रण वाले विलयन का छिड़काव कर दिया जाए तो इन पेड़ों से फलों का असमय गिरना रूक जाता है।

कुछ पौधों की पत्तियां सलाद और साग के रूप में खाई जाती हैं, जैसे पालक, धनिया, मेथी, सलाद की पत्ती आदि। इन पर जिबरेलिन हार्मोन छिड़ककर पत्तियों के आकार को बढ़ाया जा सकता है। बौनी जाति की उड़द, मूंग, राजमा आदि दलहनों की लंबाई में भी जिबरेलिन के माध्यम से वृद्धि की जा सकती है। तंबाकू और चाय जैसे पौधों, जिनकी पत्तियां ही उपयोग में लाई जाती हैं, की पत्तियों के क्षेत्रफल को जिबरेलिन द्वारा बढ़ाया जा सकता है।

पौधों की वृद्धि में सहायक हार्मोनों के अलावा कुछ वृद्धिरोधक हार्मोन भी होते हैं। इन हार्मोनों की भी अपनी उपयोगिता होती है। आलू को शीत भंडारगृह (कोल्ड स्टोरेज) में अधिक दिनों तक नहीं रखा जा सकता क्योंकि उनमें अंकुरण शुरू हो जाता है। लेकिन आलुओं पर यदि आक्सिन और मौलिक हाइड्राजाइड (जो एक वृद्धिरोधक हार्मोन है) का छिड़काव कर दिया जाए तो उन्हें तीन साल तक कोल्ड स्टोरेज में रखा जा सकता है। इसी तरह आलू के पौधों पर अगर वृद्धिरोधक हार्मोन एबसीसिक एसिड का छिड़काव कर दिया जाए तो फूल बनना रूक कर भूमि में कंद (आलू) बनने की प्रक्रिया अपने आप तेज हो जाती है। प्याज पर भी मैलिक हाइड्राजाइड का छिड़काव कर उनके अंकुरण को रोककर उन्हें अधिक दिनों तक संग्रह किया जा सकता है।

फूलों की खेती में भी हार्मोन को आजमाया गया है। कुछ फूल के पौधों जैसे गुलाब, डहेलिया, गुलदाऊदी, बोगेनवेलिया आदि की कलमें लगाकर उनसे नए पौधे तैयार किए जाते हैं। **इन पौधों की कलमों के निचले सिरे को अगर आक्सिन के कम सांद्रता वाले घोल में डुबोकर भूमि या गमलों में रोपा जाए तो कटे भागों से जड़े निकलना शुरू होती हैं। इस तरह से कलमों से पौधे प्राप्त करने की प्रक्रिया में तेजी लाई जा सकती है।**

गुलदाऊदी, गुलहजारा आदि कुछ फूल के पौधों को पुष्प उत्पन्न करने के लिए लंबी अवधि तक सूर्य के प्रकाश की जरूरत होती है। ऐसे पौधों को जिबरेलिन देकर कम अवधि के अंदर ही उन्हें पुष्पित कराया जा सकता है।

हाइओसायमस नाइपर (खुशसानी अजवाइन) आदि कुछ द्विवर्षीय पौधों में पुष्पन हेतु शीतकाल के प्राकृतिक कम तापमान की जरूरत के चलते दो वर्ष लग जाते हैं। ऐसे पौधों को अगर जिबरेलिन दे दिया जाए तो उन्हें शीतकाल के कम तापमान की जरूरत नहीं होती है और वे केवल एक वर्ष में फलने–फूलने लगते हैं।

उद्यानों में घास के मैदान पर मैलिक हाइड्राजाइड का छिड़काव कर घास की वृद्धि पर रोक लगाई जा सकती है ताकि घास काटने की मशीन और रोलर का जल्दी–जल्दी इस्तेमाल न करना पड़े।

खेतों में फसल के साथ–साथ कुछ खरपतवार भी उग आते हैं जो फसल को नुकसान पहुंचाते हैं। धान, गेहूं, मक्का आदि एकबीजपत्रीय फसल के साथ उगे द्विबीजपत्रीय खरपतवार को आक्सिन छिड़ककर नष्ट किया जा सकता है। इसी तरह चना, मटर, अरहर आदि द्विबीजपत्रीय फसल के साथ उगे एकबीजपत्रीय खरपतवारों का उन्मूलन डोलोपान के छिड़काव द्वारा किया जा सकता है।

पादप हार्मोनों पर अभी शोध चल रहे हैं। ये हार्मोन महंगे पड़ते हैं तभी वे इतने लोकप्रिय नहीं हो पाए हैं। लेकिन भविष्य में वैज्ञानिक उनको संश्लेषित करने की अपेक्षाकृत सरल विधियां भी खोज सकते हैं। तब फल–फूल, सब्जियों, अनाज आदि की उत्पादकता और गुणवत्ता को पादप हार्मोनों के प्रयोग द्वारा इच्छानुसार नियंत्रित कर पाना और भी आसान हो जाएगा। ❑

43, देशबंधु सोसाइटी
15, पटपड़गंज
दिल्ली–110092

कुरुक्षेत्र मंगाने का पता

विज्ञापन और प्रसार व्यवस्थापक
प्रकाशन विभाग
पूर्वी खंड–4, लेवल–7
रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066

मूल्य एक प्रति	:	सात रुपये
वार्षिक शुल्क	:	70 रुपये
द्विवार्षिक	:	135 रुपये
त्रैवार्षिक	:	190 रुपये

विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)

पड़ोसी देशों में	:	500 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	700 रुपये (वार्षिक)

आपका डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर **निदेशक, प्रकाशन विभाग** को **नई दिल्ली** में देय होना चाहिए।

बदलती आर्थिक परिस्थितियों के बीच ग्रामीण महिलाएं

सुभाष सेतिया

शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और महिला समानता जैसे सभी पहलू एक-दूसरे से जुड़े हैं। नई उभरती चुनौतियों से इन पहलुओं पर पड़ रहे दबाव का मुकाबला अंततः स्वयं महिलाओं को करना है और इसके हथियार हैं- चेतना, स्वावलंबन, आत्मविश्वास और एकता। उन्हें उपलब्ध सुविधाओं तथा अधिकारों का पूरा लाभ उठाना चाहिए और अपने बल पर नई सुविधाएं खड़ी करनी चाहिए।

पिछले एक दशक से अधिक समय से उदारीकरण और आर्थिक सुधार की नीतियों के अंतर्गत उठाए गए बहुत से कदमों के फलस्वरूप देश का आर्थिक माहौल बहुत तेजी से बदला है। यों इस बदलाव का असर महानगरों और शहरों पर ज्यादा पड़ा है लेकिन अब परिवर्तन की यह बयार छोटे कस्बों से होती हुई गांवों तक भी पहुंचने लगी है। क्योंकि किसी भी समाज की सभ्यता और संस्कृति वहां की अर्थव्यवस्था से अछूती नहीं रहती, इसलिए आर्थिक बदलाव का प्रभाव लोगों के केवल भौतिक और आर्थिक पहलुओं से आगे बढ़कर सामाजिक स्तर, शिक्षा, स्वास्थ्य, संस्कृति, मीडिया, कलाजगत, साहित्य जैसे सभी पक्षों पर भी पड़ रहा है।

यह सही है कि नीतियों में बदलाव का प्रभाव काफी गहरा और व्यापक है परंतु मोटे तौर पर यह अंतर निम्नलिखित रूपों में दिखाई दे रहा है:-

- सरकार की भूमिका में कमी।
- निजी क्षेत्र की भूमिका में वृद्धि।
- विदेशी निवेश को प्रोत्साहन के फलस्वरूप छोटे उद्योगों को खतरा।
- भारतीय संगीत, कला, फिल्मों जैसे सांस्कृतिक क्षेत्रों पर विदेशी प्रभाव में वृद्धि।
- उपभोक्तावाद और बाजारवाद का प्रसार।

ऊपर दिए गए सभी बिंदुओं का केंद्रीय तत्व यह है कि हमारे आर्थिक, सामाजिक जीवन में सरकार का कार्यक्षेत्र सिकुड़ता जा रहा है और गैर-सरकारी या निजी क्षेत्र का योगदान बढ़ता जा रहा है। ग्रामीण जीवन पर इस परिवर्तन का असर चिंता व चिंतन का विषय इसलिए है क्योंकि ग्रामीण विकास, विशेषकर गांवों के उपेक्षित वर्गों जिनमें महिलाएं भी शामिल हैं, के उत्थान का दायित्व सरकार ने संभाला हुआ था। इस पर केंद्र तथा राज्य सरकारें आजादी के बाद से ही विशेष ध्यान देती रही हैं। चिंता का दूसरा कारण यह है कि **नई नीतियों का लाभ मुख्यतः शहरी मध्यम वर्ग को मिला है जबकि इनके नकारात्मक प्रभाव किसानों, मजदूरों, ग्रामवासियों पर अधिक दिखाई दे रहे हैं। किसी भी विपरीत प्रभाव की मार महिलाओं पर दोहरी पड़ती है क्योंकि महिला होने के कारण हर कुप्रभाव का ज्यादा बोझ औरतों को ही उठाना पड़ता है। हम यहां विभिन्न क्षेत्रों में ग्रामीण महिलाओं के सामने पेश आ रही नई चुनौतियों का विश्लेषण कर रहे हैं।**

शिक्षा और जागरुकता

शिक्षा को महिला सशक्तिकरण की कुंजी माना गया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि गांवों में स्कूलों, उनमें प्रवेश लेने वाले छात्र-छात्राओं तथा अध्यापकों की संख्या में बहुत बढ़ोतरी हुई है। शिक्षातंत्र का यह विस्तार मुख्यतया सरकारी प्रयासों से ही हुआ है। निजी क्षेत्र क्योंकि लाभ के लिए काम करता है इसलिए वह सामाजिक उद्देश्यों और दायित्वों की तरफ ध्यान नहीं देता। आर्थिक सुधारों के फलस्वरूप पब्लिक स्कूल तथा निजी क्षेत्र की शिक्षा संस्थाएं अधिक खुल रही हैं और सरकारी तथा स्थानीय निकायों द्वारा संचालित स्कूलों व कालेजों की स्थिति बदतर होती जा रही है। गांवों के स्कूलों की स्थिति तो पहले से ही शोचनीय है। ग्रामीण लड़कियां शिक्षा के मामले में लड़कों से बहुत पीछे हैं और अब सार्वजनिक शिक्षातंत्र सिकुड़ जाने से और अधिक लड़कियां पढ़ाई-लिखाई के अवसरों से वंचित होती जा रही हैं। आगे चलकर यह स्थिति और गंभीर हो सकती है क्योंकि सरकारी शिक्षण संस्थाओं की उपेक्षा के परिणाम अभी तक पूरी तरह सामने नहीं आए हैं।

सरकारी तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार महिला साक्षरता की दर पुरुष साक्षरता दर से काफी कम है। 2001 की जनगणना के मुताबिक पुरुषों की 75.85 प्रतिशत की तुलना में महिला साक्षरता दर 54 प्रतिशत है। गांवों में अधिकांश मां-बाप निरक्षर होते हैं जिससे वे बच्चों, विशेषकर लड़कियों की शिक्षा

को कोई महत्व नहीं देते। पिछले दिनों कई राज्य सरकारों द्वारा लड़कियों की शिक्षा के लिए कई तरह की रियायतों व प्रोत्साहनों की घोषणा के फलस्वरूप स्कूलों में दाखिला लेने वाली बच्चियों की संख्या बढ़ रही थी।

सामाजिक रीति–रिवाजों, रूढ़ियों और पुरानी सोच के चलते पढ़ाई बीच में छोड़ने वाले बच्चों में लड़कियों की संख्या लड़कों से कई गुना अधिक रहती है जिससे पुरुषों तथा महिलाओं की साक्षरता दर में इतना अंतर बना हुआ है। अब नई आर्थिक परिस्थितियों में सरकारी स्कूलों पर ध्यान कम हो जाने से लड़कियों को, विशेषकर ग्रामीण बालिकाओं को शिक्षित करने के अभियान में ढिलाई आना तय है जिससे महिला सशक्तिकरण की गति धीमी पड़ेगी।

यह एक सुखद तथ्य है कि इस चुनौती से निपटने के लिए स्वयंसेवी क्षेत्र आगे आ रहा है। अनौपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में तो कई गैर–सरकारी संगठन बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। सरकार पर जोर डाला जाना चाहिए कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में वह शिक्षा जैसी बुनियादी आवश्यकता की उपेक्षा न करे। प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकार मान लिए जाने के बाद तो यह आशा की ही जानी चाहिए कि अन्य क्षेत्रों में सरकारी खर्च में कमी से जो धन बचेगा, सरकार उसे महिला शिक्षा पर खर्च करेगी।

आर्थिक स्वावलंबन

यह बात दोहराने की आवश्यकता नहीं कि भारतीय समाज में पुरुषों की तुलना में महिलाओं को हीन और दुर्बल माना जाता है अर्थात हर मामले में लड़कियों के साथ भेदभाव किया जाता है। यह भेदभाव शहरों की तुलना में गांवों में काफी अधिक दिखाई देता है क्योंकि ग्रामीण परिवेश में सामंतवादी व्यवस्था अभी जीवित है जिसमें औरत को व्यक्ति नहीं 'वस्तु' माना जाता है और शिक्षा तथा जागरूकता की कमी के चलते औरतें अपने प्रति होने वाले भेदभाव व अन्याय का प्रतिकार नहीं कर पातीं। इसका एक मुख्य कारण यह है कि औरत आर्थिक दृष्टि से पुरुषों पर निर्भर रहती आई है। जैसे–जैसे महिलाएं विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार पाकर स्वावलंबी बन रही हैं, उनके प्रति भेदभाव घट रहा है। किंतु यह सकारात्मक

परिवर्तन बहुत ही धीमा है। आर्थिक स्वावलंबन के महत्व को समझते हुए सरकारी स्तर पर महिला रोजगार को बढ़ावा देने वाली अनेक योजनाएं शुरू की गई हैं जिनमें सीधे रोजगार देने के कार्यक्रमों के साथ महिलाओं को अपना काम–धंधा चलाने के योग्य बनाने के लिए विभिन्न शिल्पों तथा तकनीकों का प्रशिक्षण दिया जाता है। उदाहरण के लिए स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना के अंतर्गत गांवों के निर्धन परिवारों को कोई भी छोटा–मोटा उद्योग धंधा शुरू करने के लिए परियोजना के कुल खर्च का 30 प्रतिशत धन सहायता के रूप में दिया जाता है। इस योजना में कुल स्वरोजगारियों में 40 प्रतिशत महिलाएं होती हैं।

इसी प्रकार संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना नाम के एक अन्य कार्यक्रम के अंतर्गत निर्धन ग्रामीणों के लिए ऐसे कार्यक्रम शुरू किए जाते हैं जिनमें उन्हें वेतन वाले रोजगार मिल सकें। इसमें भी महिलाओं पर विशेष ध्यान देने का प्रावधान है। महिला और बाल विकास विभाग, केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड तथा समाज कल्याण बोर्डों द्वारा भी महिलाओं को प्रशिक्षण तथा काम–धंधा शुरू करने के लिए वित्तीय सहायता देने के अनेक कार्यक्रम चल रहे हैं। विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा भी महिला रोजगार के अनेक कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। कुछ स्वयंसेवी संगठन भी गांवों में लड़कियों को सिलाई–कढ़ाई के साथ–साथ आधुनिक तकनीकों, जैसेकि कंप्यूटर फोटोग्राफी, टेक्सटाइल डिजाइनिंग आदि का प्रशिक्षण दे रहे हैं जिससे वो आसपास के कस्बों या शहरों में नौकरी पा सकती हैं। परंतु अधिकतर ग्रामीण महिलाएं खेतों में या कुटीर उद्योगों में काम करती हैं। आर्थिक सुधारों के कारण बहुराष्ट्रीय कंपनियां तथा बड़ी–बड़ी भारतीय कंपनियां और बड़े उद्योग पनप रहे हैं। लघु व कुटीर उद्योगों पर ताले पड़ते जा रहे हैं। विदेशों से आयातित उत्पादों के सामने स्थानीय स्तर पर हस्तशिल्प से निर्मित वस्तुएं गुणवत्ता या लागत की दृष्टि से टिक नहीं पातीं और ऐसे उद्योग तथा उद्यम बड़ी तेज़ी से बंद हो रहे हैं। ऐसे में महिलाओं के लिए स्वरोजगार तो दूर वेतन वाले रोजगार के अवसर भी कम हो रहे हैं। इस प्रकार रोजगार यानी आर्थिक **स्वावलंबन के माध्यम से महिला सशक्तिकरण की गाड़ी मंजिल तक पहुंचने से पहले ही हिचकोले खाने लगी है। इस संकट की ओर योजनाकारों को गंभीरतापूर्वक ध्यान देना होगा नहीं तो महिला समानता का सपना पूरा नहीं हो पाएगा।**

स्वास्थ्य और सामाजिक स्तर

यह आम मान्यता है कि गांवों में दूध, दही, घी, ताजा सब्जियों तथा प्रदूषणरहित वातावरण

के कारण ग्रामीण लोग शहरी जनता की तुलना में अधिक स्वस्थ होते हैं। परंतु जहां तक महिलाओं के स्वास्थ्य का संबंध है, यह बात मिथ्या दिखाई देती है। पहली बात तो यह है कि गांवों की तीन चौथाई आबादी निर्धनता, निरक्षरता और अज्ञानता की शिकार है, जिससे उन्हें स्वास्थ्य के विभिन्न पहलुओं और चिकित्सा सुविधाओं की सम्यक जानकारी ही नहीं होती है और जिन्हें होती है वे गरीबी के कारण उनका लाभ नहीं उठा पातीं। योजना आयोग द्वारा जारी राष्ट्रीय मानव विकास रिपोर्ट के अनुसार भारत में 51 प्रतिशत से अधिक महिलाएं एनीमिया यानी रक्त की कमी से ग्रस्त हैं। गांवों में बाल मृत्युदर और प्रसव के समय औरतों की मृत्युदर बहुत ऊंची है। गांवों में निजी डाक्टर न के बराबर होते हैं क्योंकि भारी खर्च के बाद एमबीबीएस करने वाले युवक बहुत कम आय की आशंका के कारण गांवों में जाते ही नहीं हैं। प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र ग्रामीण स्वास्थ्य सेवा के आधारबिंदु हैं, परंतु उपभोक्तावाद की तेज हो रही लहर के कारण डाक्टरों में अमीर बनने की दृढ़ चाह के चलते ग्रामीण स्वास्थ्य और उपेक्षित होता जा रहा है। महिलाएं वैसे भी परिवार में महत्व की दृष्टि से सबसे अंतिम छोर पर रहती हैं। परिवार में उपलब्ध आहार के पहले हकदार पुरुष और लड़के होते हैं और उनसे बचा आहार व पौष्टिक पदार्थ लड़कियों व महिलाओं के हिस्से में आते हैं जिनसे लड़कियों व महिलाओं की सेहत बिगड़ती जाती है। घटती तथा बिगड़ती चिकित्सा सुविधाएं ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य की स्थिति को और बदतर बना रही हैं।

बढ़ती जनसंख्या के कारण सरकार के लिए यों भी पर्याप्त चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध कराना कठिन होता जा रहा है और रही–सही कसर नई आर्थिक परिस्थितियों से पूरी होने जा रही है क्योंकि शिक्षा की तरह स्वास्थ्य में भी सरकार का स्थान निजी क्षेत्र ले रहा है। इससे निर्धन ग्रामीण महिलाओं के सामने स्वास्थ्य और चिकित्सा का गंभीर संकट उभर रहा है। परिवार कल्याण या जनसंख्या नियंत्रण यों तो राष्ट्रीय दायित्व है, परंतु इसका अधिकतर बोझ महिलाओं को उठाना पड़ता है। गर्भ निरोधक उपाय महिलाएं ही अधिक अपनाती हैं क्योंकि पुरुषों की इच्छा ही ज्यादातर मामलों में हावी रहती है, जिनमें संतान प्राप्ति की इच्छा भी शामिल है। इसके अलावा लड़का पाने की चाह के कारण ग्रामीण महिलाएं बच्चे जनते रहने को विवश रहती हैं जिससे उनके स्वास्थ्य पर विपरीत असर पड़ता है। इन सभी परंपरागत बुराइयों में तो विशेष सुधार हुआ नहीं है लेकिन गर्भ में भ्रूण के लिंग का पता लगा लेने की आधुनिक तकनीक ने बच्चियों को जन्म से पहले ही मार देने की नई मुसीबत पैदा कर दी है। हमारे देश में पहले ही प्रति हजार पुरुषों के पीछे स्त्रियों की संख्या केवल 934 है जो विकसित देशों ही नहीं पाकिस्तान, बंगलादेश और श्रीलंका जैसे हमारे पड़ोसी विकासशील देशों से भी काफी कम है। अचरज की बात यह है कि भ्रूण परीक्षण की तकनीक उन राज्यों में ज्यादा लोकप्रिय है, जो आर्थिक और शैक्षिक दृष्टि से विकसित समझे जाते हैं। पैदा होने वाली बहुत–सी बच्चियां भी उपेक्षा और भेदभाव के कारण बचपन में ही काल का शिकार हो जाती हैं। यही कारण है कि 2001 की जनगणना के अनुसार 0–6 वर्ष के आयु वर्ग में 1,000 लड़कों पर 927 लड़कियां रह गई हैं। पंजाब, हरियाणा, गुजरात और महाराष्ट्र जैसे देश के सबसे संपन्न राज्यों के आंकड़े चौंकाने वाले हैं। तालिका–1 से ये स्पष्ट है कि यह अंतर गांवों के मुकाबले शहरों में अधिक है जो भ्रूण परीक्षण तकनीक के व्यापक इस्तेमाल की ओर संकेत करता है क्योंकि इस नामुराद वैज्ञानिक विधि का उपयोग शहरी लोग ही अधिक करते हैं।

तालिका–1
0–6 आयुवर्ग में 100 लड़कों पर लड़कियों की संख्या

राज्य	शहरी	ग्रामीण
पंजाब	789	795
हरियाणा	808	824
गुजरात	827	905
महाराष्ट्र	908	923
राष्ट्रीय	903	934

हालांकि केंद्र और राज्य सरकारों ने भ्रूण परीक्षण विधि पर प्रतिबंध लगाया है और ऐसे क्लिनिकों व डाक्टरों के खिलाफ कार्रवाई भी की जा रही है परंतु ऐसा लगता है कि इस नए संकट पर काबू पाने में सफलता नहीं मिल पा रही है क्योंकि हमारा समूचा समाज लड़के की चाह का मारा है। दहेज, लड़की को बोझ और पुत्र को स्वर्ग प्राप्ति का माध्यम मानने जैसी धार्मिक और सामाजिक परांपराएं भी लड़के की चाह को और मजबूत बनाती हैं।

यह सही है कि भ्रूण परीक्षण विधि अभी शहरों तक सीमित है। परंतु यह दुष्प्रवृत्ति बड़ी तेजी से कस्बों और गांवों की ओर बढ़ रही है। गांवों में एक बार इस विधि की जड़ें जम गईं, जिसकी संभावना कठिन नहीं है, तो लड़कों के मुकाबले लड़कियों के अनुपात में गिरावट काफी गंभीर हो जाएगी जिससे देश में कई तरह की सांस्कृतिक, सामाजिक समस्याएं सामने आ सकती हैं। गांवों में लड़का चाहने वाले लोगों की संख्या वैसे भी काफी ज्यादा है। इसलिए लड़कियों को बराबरी का दर्जा दिलाने की दिशा में काम कर रही संस्थाओं को अपनी गतिविधियों को गांवों तक ले जाने के प्रति अभी से सचेत हो जाना चाहिए।

जाहिर है शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और महिला समानता जैसे सभी पहलू एक–दूसरे से जुड़े हैं। नई उभरती चुनौतियों से इन पहलुओं पर पड़ रहे दबाव का मुकाबला अंततः स्वयं महिलाओं को करना है और इसके हथियार हैं– चेतना, स्वावलंबन, आत्मविश्वास और एकता। उन्हें उपलब्ध सुविधाओं तथा अधिकारों का पूरा लाभ उठाना चाहिए और अपने बल पर नई सुविधाएं खड़ी करनी चाहिए। उदाहरण के लिए **पंचायतों में आरक्षण से ग्रामीण महिलाओं को जो ताकत और अधिकार मिले हैं, उनका उपयोग करके वे अपनी पथरीली राहों को सुगम बना सकती हैं। लेकिन गांवों की औरतें क्योंकि अशिक्षित, कम जागरूक तथा दुर्बल हैं इसलिए शहरी और शिक्षित व जागरूक महिलाओं एवं संवेदनशील तथा प्रगतिशील पुरुषों को इस विशद प्रयास में सहयोग देना होगा।** ❑

(लेखक आकाशवाणी के समाचार सेवा प्रभाग में निदेशक हैं।)

मध्यप्रदेश के आदिवासियों की जीवनशैली में लघुवनोपज का महत्व

डा. अंजिला गुप्ता, डा. नीति जैन

वर्तमान में अनेकानेक शोधों के उपरांत लघुवनोपज संपदा की आर्थिक संभावनाओं पर विशेष प्रकाश पड़ा है। अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने अपने स्तर पर भी लघुवनोपजों के आर्थिक महत्व को स्वीकार किया है। इस आलेख में मध्य प्रदेश की ग्राम्य अर्थव्यवस्था में आदिवासियों द्वारा लघुवनोपज की संकलन प्रवृत्ति, उपभोग प्रवृत्ति तथा आय एवं रोजगार सृजन का विश्लेष्णात्मक अध्ययन किया गया है।

एशिया एवं प्रशांत वनक्षेत्रों में रहने वाली जनसंख्या परंपरागत रूप से बहुत प्राचीन काल से ही वनों से प्राप्त होने वाली लघुवनोपज के आर्थिक मूल्य एवं लाभों से परिचित रही है। शताब्दियों से इन क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासियों एवं ग्रामीण समुदाय के लिए लघुवनोपज की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रही है। अभी तक लघुवनोपजों का महत्व आधारभूत रूप से इन आदिवासियों की दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु रहा, परंतु अब परिस्थितियां परिवर्तित हो रही हैं। वर्तमान में अनेकानेक शोधों के उपरांत लघुवनोपज संपदा की आर्थिक संभावनाओं पर विशेष प्रकाश पड़ा है।

अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने अपने स्तर पर भी लघुवनोपजों के आर्थिक महत्व को स्वीकार किया है। खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) ने संतुलित वन विकास एवं संपोष्य वन प्रबंधन के संबंध में लघुवनोपज की भूमिका के महत्व को स्वीकार किया है। विशेष रूप से एशिया एवं प्रशांत महाद्वीप के लिए खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) द्वारा क्षेत्रीय कार्यालय स्थापित किए गए हैं जो लघुवनोपजों से संबंधित समंकों के संग्रहण एवं वनोपज के सफल प्रबंधन हेतु विशेष संबंधित क्षेत्रों का अध्ययन, वनोपज से संबंधित जानकारियों का प्रकाशन, सेमीनार एवं अधिवेशनों का आयोजन एवं लघुवनोपजों से संबंधित विभिन्न परियोजनाओं हेतु कार्यरत हैं।

लघुवनोपजों से संबंधित अध्ययन को यद्यपि वानिकीविदों ने कभी भी उपेक्षित नहीं किया परंतु इस वनोत्पाद को सामान्य रूप से काष्ठ उत्पादों की तुलना में केवल द्वितीयक या तृतीयक स्थान मिलता रहा है। परंपरागत रूप से वानिकीविद् एवं वन प्रबंधक, काष्ठ उत्पाद एवं इसके ऊंचे मूल्य से ही आकर्षित होते रहे हैं। वस्तुतः आधुनिक संरक्षणवादी वानिकीविदों एवं वैज्ञानिकों ने ही लघुवनोपज की नवीन 'आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक' संभावनाओं को पुनरान्वेषित किया है।

ऐतिहासिक दृष्टि डालने से स्पष्ट होता है कि पूर्व में ऐसे वनोत्पाद जिनका कोई महत्वपूर्ण तात्कालिक वाणिज्यिक मूल्य नहीं था लघुवनोपज के नाम से बुलाए गए। यद्यपि उस समय भी स्थानीय समुदाय के लिए ये लघुवनोपज अति महत्वपूर्ण थे। अब इन लघुवनोपजों को एक अधिक वैज्ञानिक एवं समुचित नाम **गैर–काष्ठ वनोत्पाद** दिया गया है।

एशिया एवं प्रशांत महाद्वीप के विकासशील देशों में लघुवनोपज आदिवासियों एवं स्थानीय समुदायों को उल्लेखनीय रोजगार अवसर एवं आय प्रदान करते हैं। स्थानीय समुदाय इन विविध वनोपजों का संग्रहण, प्रक्रियण एवं विपणन करते हैं। अपनी स्वयं की दैनिक आवश्यकताओं एवं भोजन हेतु भी आदिवासी एवं ग्रामीणजन शहद, मशरूम, फल, चिरौंजी, महुआ एवं अन्य अनेकानेक वनोपजों पर निर्भर रहते हैं।

इस आलेख में मध्य प्रदेश की ग्राम्य अर्थव्यवस्था में आदिवासियों द्वारा लघुवनोपज की संकलन प्रवृत्ति, उपभोग प्रवृत्ति एवं आय एवं रोजगार सृजन का विश्लेष्णात्मक अध्ययन किया गया है। अध्ययन में मंडला जिले की दो तहसीलों निवास एवं नैनपुर का चयन किया गया है। इसके लिए छः वनोपजों के आर्थिक अध्ययन हेतु उपर्युक्त तहसीलों से दो प्रतिनिधि गांवों काल्पी एवं घटेरी का चयन किया गया है। चयनित तहसील के दोनों गांवों से चालीस परिवारों का साक्षात्कार संरचित प्रश्नावली के द्वारा कर समंक संकलित किए गए। गांवों का चयन अध्ययन के अंतर्गत लिए गए लघु वनोपज पलाश बीज, महुआ फूल, महुआ बीज, तेंदूफूल, चार तथा तेंदूपत्ता की सघनता को ध्यान में रखकर किया गया है। चयनित परिवारों से पलाश बीज, महुआ फूल, महुआ बीज, तेंदूफल, चार तथा तेंदूपत्ता उत्पादन, संकलन, विपणन, आय परिवार की भागीदारी, कीमत एवं उपभोग से संबंधित प्रश्न के आधार पर सुनिश्चित प्रश्नावली के द्वारा सर्वेक्षण कार्य संपन्न किया गया।

प्रमुख लघुवनोपज मंडी काल्पी एवं घटेरी के सर्वेक्षण के आधार पर ज्ञात होता है कि दोनों गांवों में पलाश बीज के विक्रय का प्रतिशत सर्वाधिक है। घटेरी गांव में पलाश बीज के विक्रय का प्रतिशत (85 प्रतिशत) सर्वाधिक है। काल्पी तथा घटेरी दोनों गांवों में महुआ फूल के विक्रय का प्रतिशत सबसे कम है। घटेरी गांव में पलाश बीज, महुआ फूल, महुआ बीज, तेंदूफल एवं चार के विक्रय से प्राप्त आय का प्रतिशत क्रमशः 7.8 प्रतिशत, 6.3 प्रतिशत, 7.8 प्रतिशत, 4.4 प्रतिशत, 1.2 प्रतिशत, 80 प्रतिशत है। काल्पी एवं घटेरी गांव में चार के विक्रय से प्राप्त आय का प्रतिशत (80 प्रतिशत) सर्वाधिक व समान है। जबकि घटेरी गांव में तेंदूफल के विक्रय से प्राप्त आय का प्रतिशत (1.2 प्रतिशत) सबसे कम है। घटेरी गांव में भी तेंदूफल के विक्रय से प्राप्त आय का प्रतिशत कम होने का

कारण कुल संग्रहण के अधिकांश भाग का उपभोग करना है।

लघुवनोपज से रोजगार सृजन

लघुवनोपज को काष्ठ उत्पाद के बाद दूसरा स्थान प्रदान किया गया है। काष्ठ उत्पाद को मुख्य एवं लघुवनोपज को गौण उपज भी कहते हैं। भारत के वनों से प्राप्त आय का लगभग 60 प्रतिशत लघुवनोपज से प्राप्त होता है। गैर सरकारी आंकड़ों के अनुसार लघुवनोपज से प्राप्त आय 60 प्रतिशत से भी अधिक है। भारत के 50 मिलियन से भी अधिक आदिवासियों को लघुवनोपज से वस्तु रूप में अथवा नकद आय प्राप्त होती है। लघुवनोपज अधिकांशतः स्थानीय लोग उपयोग करते हैं। यही स्थानीय लोग लघुवनोपज का संग्रहण कर उसका विक्रय भी करते हैं।

भारतीय वानिकी क्षेत्र में लघुवनोपजों से लगभग 70 प्रतिशत से अधिक रोजगार सृजन होता है। वाणिज्यिक लघुवनोपज प्रतिवर्ष 3 मिलियन से भी अधिक आय प्रदान करती है। लघुवनोपज लाखों ग्रामीण भारतीयों को रोजगार के अवसर प्रदान करती है। ग्रामीण यदि लघुवनोपज का व्यवसाय न करते तो वे कृषि श्रमिक या गरीब शहरी की तरह जीवनयापन करने पर विवश होते हैं। इसके अतिरिक्त महत्वपूर्ण संख्या में लोग लघुवनोपज के प्रक्रियण एवं विपणन में लगे हुए हैं, फिर भी लघुवनोपज ग्रामीण रोजगार क्षेत्र में न्यूनतम मजदूरी सृजित करता है। अधिकांश प्रांतों में लघुवनोपज के अतिरिक्त अन्य क्षेत्र न्यूनतम मजदूरी 30–40 रुपये प्रतिदिन कमाते हैं, जबकि अधिकांशतः लघुवनोपज संग्रहणकर्ता को मात्र 5–15 रुपये प्रतिदिन की मजदूरी प्राप्त होती है। कम मजदूरी यह प्रदर्शित करती है कि वनों का प्रबंधन गैर–जिम्मेदार है एवं उत्पादकता न्यून है। प्रदेश की व्यापार नीतियों ने एवं व्यक्तिगत क्रेता ने लघुवनोपज की संभावनाओं का आकलन कमतर किया है। (पोफेन बर्गर, 1994) तालिका–1 से लघुवनोपज द्वारा रोजगार सृजन को स्पष्ट किया गया है।

वनोपजों से संबंधित समस्याएं

लघुवनोपज की विभिन्न प्रक्रियाओं में कुछ समस्याएं निहित हैं। इन समस्याओं का निराकरण कर लघुवनोपज की महत्ता को अक्षुण्ण रखा जा सकता है तथा आदिवासी अर्थव्यवस्था में लघुवनोपज की भूमिका को प्रभावपूर्ण बनाया जा सकता है।

अपनी गोद में करोड़ों की संपदा समाहित किए हुए प्राकृतिक संपदा से परिपूर्ण मध्य प्रदेश के कुल क्षेत्रफल का 30.5 प्रतिशत भू–भाग वनावरण से आच्छादित है। वन संपदा में जहां लघुवनोपज एवं जड़ी–बूटियों की भूमिका दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है वहीं विदेशों में इसके प्रति बढ़ता आकर्षक एवं मांग से बहुमूल्य विदेशी मुद्रा प्राप्त करने का यह एक महत्वपूर्ण स्रोत बनता जा रहा है। दुखद पक्ष यह है कि इन जड़ी–बूटियों एवं वनोपज के समीप रहने वाले उसके लाभ के वास्तविक हकदार अनेक प्रयत्नों के पश्चात् भी शोषण का शिकार हो रहे हैं।

लघुवनोपज के बारे में एक चिंता आज समाज में बुद्धिजीवियों को उद्वेलित किए हुए हैं जो इसकी अस्मिता व अस्तित्व को लेकर है। प्रदेश सरकार ने अराष्ट्रीयकृत लघुवनोपज संग्रहण को नैसर्गिक अधिकार

तालिका – 1
भारत में लघुवनोपज से रोजगार सृजन

उत्पाद	संग्रहण अवधि	रोजगार (हजार व्यक्ति प्रतिवर्ष)	
		वर्तमान	उत्पादन क्षमता
रेशे	मार्च–मई	4.4	79
रोएंदार रेशे	मई–जून	10	15
घास	अक्तूबर–मार्च	1200	1800
बांस	सतत्	48.3	110
तात	सतत्	0.7	1.05
लेमन ग्रास तेल	मई–जून	21.7	32.55
गरी तेल	अक्तूबर–नवंबर	1.5	2.25
तिरवाड़ी तेल	सतत्	2.32	3.48
दालचीनी तेल	सतत्	0.05	0.07
चंदन तेल	सतत्	1.5	2.25
देवदार तेल	सतत्	0.15	0.23
चीड़ तेल	सतत्	NA	100
महुआ बीज	अप्रैल–जून (उ.) अक्तू.–नवं. (द.)	28.6	163
नीम बीज	मई–जून	1	70
साल बीज	अप्रैल–जून	53	1,123
कोकूम बीज	मई–जून	0.167	0.7
खाकन बीज	मई–जून	0.570	15.3
नहोर बीज	मई–जून	NA	1.9
अंडी बीज	अप्रैल–जून एवं सित.–नव.	NA	NA
करंज बीज	जून–अक्तूबर	19	37
कुसुम बीज	जून–जूलाई	6.7	30
बबूल की छाल	सतत्	4.57	8.3
अवेरम छाल	सतत्	5	7.5
वेटल छाल	सतत्	5	7.5
हर्रा	जन.–मार्च	6.6	9.9
कराया गोंद	अप्रैल–जून	50	75
खट्टी एवं बबूल गोंद	अप्रैल–जून	7	10.5
रेजिन	मार्च–जून	30	60.2
लाख एवं लाख उत्पाद	अक्तू.–जन. एवं अप्रैल–जूलाई	7.3	10.95
टसर रेशम	अगस्त–दिसंबर	1.5	9.5
तेंदूपत्ता	अप्रैल–जून	74.9	107
सर्पगंधा	परिवर्तनशील	16	42.67
कुथ	अक्तूबर	16	26.67
सिनकोना	परिवर्तनशील	23.635	33.335
खाद उत्पाद	परिवर्तनशील	NA	NA

स्रोत : 'नॉन–वुड फॉरेस्ट प्रोडक्टस इन एशिया', रापा, बैंकाक, 1994

मानते हुए आदिवासियों/वनवासियों के हितार्थ खुली छूट दी हुई है, लेकिन इस छूट के दूरगामी परिणाम कितने घातक हो सकते हैं, कहा नहीं जा सकता। अभाव एवं निर्धनता ने जिस निर्ममतापूर्वक तरीके से इसके विदोहन के लिए प्रेरित किया है उसे यदि समय रहते न नियंत्रित किया गया तो समाज का बहुसंख्यक समुदाय मूल्यवान बहूपयोगी औषधियों से वंचित हो जाएगा।

प्राथमिक वनोपज सहकारी समिति के पदाधिकारियों का वनोपज व्यापार के लिए जो वाणिज्यिक दृष्टिकोण होना चाहिए, उसका सर्वथा अभाव भी वनोपज संग्रहण में एक बड़ी बाधा है। इन सहकारी समितियों में एक बड़ी राशि कमीशन के बतौर आज भी समिति खाता में है, किंतु इसका उपयोग वनोपज के संग्रहण में समिति पदाधिकारियों द्वारा नहीं किया जा रहा है।

प्राथमिक वनोपज सहकारी समिति के द्वारा संग्रहित वनोपज के सुव्यस्थित विपणन की व्यवस्था वर्तमान में उपलब्ध नहीं है तथा इसके लिए उन्हें मुख्य बाजार की मांग पर निर्भर रहना पड़ता है। इससे कभी–कभी समितियों को आर्थिक क्षति भी उठानी पड़ सकती है। पंजीकरण विभिन्न वनोपज के लिए किया जाए, यह भी आवश्यक है। कुछ वनोपज का व्यापार समिति स्वयं कर सकती है, शेष वनोपज का शुल्क निर्धारित कर समर्थन मूल्य पर संग्रहण करने के लिए व्यापारियों को समिति दे सकती है। इस पद्धति से समिति स्तर लघुवनोपज के व्यापार में जहां संग्रहणकताओं को न्यायसंगत संग्रहण मूल्य प्राप्त होगा, वहीं दूसरी ओर समिति को आर्थिक लाभ भी होगा। यदि उपर्युक्त प्रकार से समिति का क्रियान्वयन सफलतापूर्वक कर लिया जाए तो लघुवनोपज संग्रहणकर्ता आदिवासी जनसंख्या को भी इसके अधिकतम लाभ प्राप्त हो सकेंगे।

प्रमुख बहूपयोगी वनोपज

पलाश बीज : पलाश बीज सर्वाधिक सहजता से उपलब्ध होने वाली बहूपयोगी वनोपज है। इसके संग्रहण एवं विक्रय में आदिवासियों को किसी भी प्रकार की विशेष समस्या का सामना नहीं करना पड़ता। पलाश बीज एवं पत्ते का वाणिज्यिक उपयोग महत्वपूर्ण होने के कारण इसकी मांग हमेशा बनी रहती है। पलाश बीज का विक्रय सौ प्रतिशत बिचौलियों के द्वारा होता है। अतः आदिवासी की मेहनत का सही मूल्य संग्रहणकताओं को प्राप्त नहीं हो पाता।

महुआ फूल : महुआ फूल लघुवनोपज पर आश्रित जनसंख्या हेतु सर्वाधिक महत्वपूर्ण लघुवनोपज है। महुआ फूल के संग्रहणकर्ता के संदर्भ में विचित्र विरोधाभास दृष्टिगोचर होता है कि नगद आय की प्राप्ति हेतु तथा भंडारण के अभाव के कारण संग्रहणकर्ता इसे आधी कीमत पर विक्रय करते हैं एवं कुछ समय उपरांत पुनः इसे दुगुनी कीमत पर क्रय करते हैं। यह क्रय उन्हें महुआ फूल की निरंतर आवश्यकताओं के कारण करना पड़ता है।

महुआ बीज : महुआ बीज का संगहण इसे पकने से पूर्व ही कर लिया जाता है। इस स्थिति में बीज में तेल की मात्रा पर्याप्त नहीं होती है अतः संग्रहणकताओं को उचित मूल्य प्राप्त नहीं होता। परस्पर प्रतिद्वंद्विता, धन के अभाव एवं सीमित वनोपज के कारण यह प्रवृत्ति पाई जाती है।

तेंदूफल : 90 प्रतिशत तेंदूफल का उपयोग शीघ्रातिशीघ्र कर लिया जाता है। शेष 10 प्रतिशत तेंदूफल का स्थानीय बाजार में विक्रय हो जाता है। तेंदूफल गर्मी से शीघ्र ही नष्ट (24 घंटे में) हो जाते हैं अतः इसको अधिक समय तक सुरक्षित नहीं रखा जा सकता।

चार : चार को तराजू से तोलकर बरहैया (एक किलो के लिए) एवं कुरो (चार किलो के लिए) से बिचौलियों या अन्य व्यक्ति द्वारा तोल कर ली जाती है। इससे तोल में ज्यादा मात्रा जाने की संभावना रहती है। परिणामस्वरूप संग्रहणकर्ताओं को आर्थिक नुकसान होता है। इस उपकरण का उपयोग बिचौलिए या अन्य व्यक्ति स्वयं ही करते हैं। चार की यह प्रजाति धीमी गति से बढ़ने वाली है। इसकी सबसे बड़ी कमी यह है कि इसमें फल व फूल दोनों पौधे के रोपण से आठ–दस साल के पश्चात ही आते हैं।

तेंदूपत्ता : संग्रहणकर्ता तेंदूपत्ता की गड्डियां लेकर संग्रहण केंद्रों में जाते हैं या बिचौलियों को विक्रय करते हैं। प्रत्येक सौ गड्डी पर पांच गड्डी अतिरिक्त यह कहकर मांगी जाती हैं कि गड्डियों में पत्ते कम हैं या कटे–फटे पत्ते संग्रहणकर्ता ने लगाए हैं। संग्रहणकर्ताओं को मजबूर होकर पांच गड्डी प्रत्येक सौ गड्डी पर देनी पड़ती हैं। आदिवासी के साक्षर न होने से गड्डी बनाने एवं विक्रय प्रक्रिया में असुविधा होती है।

इस प्रकार उपर्युक्त विश्लेषण स्पष्ट करता है कि लघुवनोपज के संग्रहण, उपभोग, विक्रय एवं आय सृजन से संबंधित समस्याओं का स्वरूप क्या है एवं वनोपजवार समस्याओं की विशिष्टता किस प्रकृति की है।

अनुशंसाएं

लघुवनोपज आदिवासियों एवं वन क्षेत्र के गरीब वर्ग के उपयोग, विपणन तथा आर्थिक विकास में अहम भूमिका अदा करते हैं। इसकी कमी अथवा अनियमित विदोहन एवं शोषण आदिवासी अर्थव्यवस्था की स्वतंत्र जीवनचर्या को प्रत्यक्षतः प्रभावित करता है। लघु वनोपज के संग्रहण एवं विपणन से रोजगार के व्यापक अवसर उपलब्ध हो सकते हैं। **संग्रहण और वर्गीकरण की व्यवस्थित वैज्ञानिक पद्धति प्रारंभ कर इसके उत्पादन एवं संग्रहण को बढ़ाने की आवश्यकता है। लघुवनोपज कार्यक्रमों में आदिवासियों के अर्थपूर्ण सहयोग की ओर सकारात्मक रुख अपनाना होगा, ताकि वे केवल श्रमिक ही न बने रहें अपितु समूचे प्रयास में सक्रिय भागीदारी की भूमिका निभा सकें, जिनका उद्देश्य उनकी आर्थिक स्थिति सुधारना है।**

वनसंपदा के अध्ययन में वनोपज का संगहण अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वनोपज की सुरक्षा एवं वनोपज के संग्रहण के लिए कुशल संग्रहणकर्ता आवश्यक है। तेंदूपत्ता, हर्रा, महुआ, वन्य फलों आदि को उचित समय पर एकत्रित करना चाहिए जिससे वे वनों में वर्षा, धूप, आंधी–तूफान आदि से नष्ट न होने पाएं। इस वनोपज को संग्रहणकर्ताओं द्वारा एकत्र किया जाता है। ये संग्रहणकर्ता उचित समय पर सही कीमत पर उनकी बिक्री करते हैं। इस हेतु संग्रहणकर्ता तथा उनकी कुशल व्यवस्था आवश्यक है। वर्तमान में आदिवासी संग्रहणकर्ता गैर–प्रशिक्षित एवं अकुशल होते हैं। यदि विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों द्वारा उनकी कुशलता बढ़ाई जा सके तो संग्रहण की मात्रा बढ़ाई जा सकती है।

एशिया प्रशांत क्षेत्र के भारत सहित अनेक देशों में लघुवनोपज बहुत महत्वपूर्ण है। इन देशों की वनोपज उपलब्धता एवं महत्व की श्रेणी के मध्य उल्लेखनीय समानता है। यदि इस क्षेत्र के इन देशों के मध्य लघुवनोपज से संबंधित व्यापार एवं विभिन्न औद्योगिक प्रयोगों को प्रोत्साहित किया जाए तो संबंधित देश को

अतिरिक्त आय एवं रोजगार के रूप में इसके लाभ प्राप्त हो सकते हैं। इस प्रक्रिया से लघुवनोपज का संग्रहण एवं विक्रय करने वाला आदिवासी या वनवासी भी लाभान्वित होगा।

पलाश बीज, महुआ फूल, महुआ बीज, तेंदूपत्ता, तेंदूफल एवं चार के संग्रहण एवं विपणन व्यवसाय में आय एवं रोजगार की व्यापक संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए सर्वप्रथम इसकी प्रयोग विधि व औषधीय गुण–दोषों से आम नागरिक को परिचित कराने के प्रयास होने चाहिए। इससे व्युत्पन्न मांग का सृजन होगा, जो संग्रहणकर्ताओं की आर्थिक प्रगति में सहायक हो सकेगा।

आदिवासियों को एक प्रशिक्षण व आवश्यक किट्स उपलब्ध कराकर यदि विकास प्रक्रिया की ओर उन्मुख कर दिया जाता है तो एक वर्ष में अपेक्षाकृत अधिक रोजगार प्राप्त हो सकता है। व्यापारिक वन सामुदायिक वन के चारों ओर फैले होने चाहिए जिससे आदिवासियों को अधिक रोजगार के अवसर प्राप्त होंगे। इसके अतिरिक्त कच्चे माल को एकत्रित करने वाले संग्रहणकर्ताओं को उचित पारिश्रमिक प्रदान करना होगा।

प्रक्रियण एवं मूल्य संवर्धन आदिवासियों के लिए रोजगार का एक अच्छा स्रोत सिद्ध हो सकता है। गरीबी हटाने, वनों को शोषण से बचाने के लिए एवं व्यापार को बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि लघुवनोपजों के विकास, संग्रहण और प्रक्रियण में आदिवासियों को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

स्थानीय आदिवासी तथा वनों का पारस्परिक संबंध है। ये वनों के विकास में सहभागिता की भूमिका निभाते हैं। वर्तमान वनों को बचाना एवं नए वनों का विकास तभी संभव है जब स्थानीय व्यक्तियों को वनोपजों के महत्व के बारें में जागरूक किया जाए।

लघुवनोपज के संग्रह को भी अधिक वैज्ञानिक आधार देने की आवश्यकता है जिससे कि समाज के दीर्घकाल हितों तथा व्यक्ति के तात्कालिक हितों के मध्य तालमेल स्थापित हो सकेगा। यदि इस व्यवस्था में से ठेकेदारों को निकाल दिया जाएगा तो इस नितांत भिन्न लगने वाले हितों के समीप आने में बहुत सहायता मिलेगी।

विशिष्ट वनोपजों हेतु अनुशंसाएं

सर्वेक्षण से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर लघुवनोपज के संग्रहण में पुरुष एवं महिलाओं में से महिलाओं की भागीदारी संग्रहण एवं विपणन में सर्वाधिक है। **लघुवनोपज (संग्रहण व विपणन) महिलाओं का विशेष क्षेत्र बन सकता है अतः लघुवनोपज से संबंधित महिलामंडल आदि का निर्माण किया जाए। महिलाओं की भागीदारी का अधिक प्रतिशत महिलाओं के लिए लघुवनोपज क्षेत्र में नई संभावनाओं की ओर इंगित करता है।**

अध्ययन में सम्मिलित छः लघुवनोपजों से संबंधित विशिष्ट सुझाव इस प्रकार हो सकते हैं–

- महुआ के वृक्ष गैर–संरक्षित वन एवं दोनों में पाए जाते हैं। संयुक्त वन प्रबंधन के अंतर्गत उन आदिवासियों को ये वन क्षेत्र वितरित किए जा सकते हैं जोकि भूमिहीन व गरीब हैं व जिनके स्वयं के वृक्ष नहीं होते। स्थानीय संस्थाएं जैसे वन संरक्षण समिति, ग्रामीण वन समिति एवं ग्रामसभा उन्हें पहचानने एवं पुनर्वितरण में सहायता कर सकती है।
- महुआ वृक्षों का ग्राम स्तर पर आकलन किया जाना चाहिए ताकि पता लगाया जा सके कि ग्राम में महुआ वृक्षों का उपलब्धता स्तर क्या है एवं वृक्षों की संख्या कितनी है जैसे फूलों व बीज की कटाई इत्यादि। जैव विविधता के अंतर्गत पादपों का संग्रह एवं प्राकृतिक पैदावार की जानी चाहिए।
- महुआ के फूल का संग्रहण करने पर कई बार वे नष्ट हो जाते हैं, जिसके लिए उपयुक्त संग्रहण तकनीक प्रयोग की जानी चाहिए। जिससे उसके संग्रहण प्रक्रिया के समय में होने वाली हानि को रोका जा सके। समिति द्वारा संग्रहण एवं विपणन के महुआ में वृक्षों का उचित मूल्य जोड़ा जा सकता है एवं सदस्य बिना हानि के दोबारा क्रय कर सकते हैं।
- उत्पादक संघ एवं महिलामंडल का गठन करके गांव की महिलाएं महुआ के वृक्षों के द्वारा आय अर्जित कर सकती हैं। महुआ के वृक्ष की बहुलता व दीर्घ अवधि को देखकर ग्रामीण स्तर पर उद्योगों का विकास किया जाना चाहिए। महुआ के अच्छे उत्पादन के लिए उसके अच्छे बीजों का चयन किया जाना चाहिए ताकि उसमें से अच्छे फूल व फल प्राप्त हो सकें। इसके अतिरिक्त महुआ से अच्छे फूल एवं बीज प्राप्त करने के लिए उसको विभिन्न–विभिन्न समूहों में बांटा जाना चाहिए। महुआ के रखरखाव का उत्तम तरीका यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में महुआ से उचित कीमत प्राप्त करने के लिए महुआ की उचित भंडारण विधि का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- तेंदूफल गर्मी से नष्ट हो जाता है, अतः शासन को चाहिए कि तेंदूफल को शीत संरक्षण गृहों में रखकर तथा ग्रामीणों द्वारा इसे खरीदकर स्थानीय लोगों की आय में वृद्धि का उपाय प्रस्तुत करे।

घटेरी गांव में तेंदूपत्ता के संकलन में महिलाओं की भागीदारी का प्रतिशत अधिक होते हुए भी संकलन कम है। अतः यहां भी ट्रिप की संख्या बढ़ाकर तथा ट्रिप के समय में वृद्धि कर संकलन की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है।

काल्पी गांव में संग्रहकर्ताओं की संख्या, अभिरूचि एवं जागरुकता, इत्यादि में वृद्धि कर विचलन के प्रतिशत में कमी लाई जा सकती है फलस्वरूप तेंदूपत्ता के संकलन की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है।

यू एन ओ द्वारा भारत सरकार के पर्यावरण मंत्रालय को दो हवाई जहाज वनों में बीजों के छिड़काव के लिए दिए गए हैं। परंतु इसका उपयोग सरकारी तंत्र अपने भ्रमण या आराम के लिए अधिक करता है बीजों के छिड़काव के लिए कम। संयुक्त राष्ट्र संघ को मिथ्या आंकड़े प्रेषित कर दिए जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा सघन वनीकरण परियोजना पर कार्य किया जा रहा है। इसका प्रयोग राजस्थान व हिमाचल में काफी सफल रहा। परंतु मध्य प्रदेश में इस संबंध में बिल्कुल भी कार्य नहीं हुआ है। यदि शासन चाहे तो कृत्रिम रूप से वनोपज की वृद्धि के लिए बीजों का छिड़काव या वृक्षारोपण कर सघन वनीकरण को प्रोत्साहित कर सकता है। इससे उपज तथा उत्पादकता अधिक होगी एवं रोजगार की संभावना बढ़ेगी। पर्यावरण प्रदूषण के अवशोषक के रूप में जामुन, कनेर, पलाश, तेंदूपत्ता, चार के पौधों को श्रेष्ठतम् माना जाता है। ये वनोपज 'वनीकरण कार्यक्रम' के अंतर्गत विकसित होकर पर्यावरण संरक्षण के साधन के रूप में भी कार्य कर सकते हैं। ❑

(लेखिका द्वय क्रमशः आचार्य एवं अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, गुरु घासीदास वि.वि. बिलासपुर (छ.ग.) तथा सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र), माता गुजरी महिला महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.) हैं।)

को कोई महत्व नहीं देते। पिछले दिनों कई राज्य सरकारों द्वारा लड़कियों की शिक्षा के लिए कई तरह की रियायतों व प्रोत्साहनों की घोषणा के फलस्वरूप स्कूलों में दाखिला लेने वाली बच्चियों की संख्या बढ़ रही थी।

सामाजिक रीति–रिवाजों, रूढ़ियों और पुरानी सोच के चलते पढ़ाई बीच में छोड़ने वाले बच्चों में लड़कियों की संख्या लड़कों से कई गुना अधिक रहती है जिससे पुरुषों तथा महिलाओं की साक्षरता दर में इतना अंतर बना हुआ है। अब नई आर्थिक परिस्थितियों में सरकारी स्कूलों पर ध्यान कम हो जाने से लड़कियों को, विशेषकर ग्रामीण बालिकाओं को शिक्षित करने के अभियान में ढिलाई आना तय है जिससे महिला सशक्तिकरण की गति धीमी पड़ेगी।

यह एक सुखद तथ्य है कि इस चुनौती से निपटने के लिए स्वयंसेवी क्षेत्र आगे आ रहा है। अनौपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में तो कई गैर–सरकारी संगठन बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। सरकार पर जोर डाला जाना चाहिए कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में वह शिक्षा जैसी बुनियादी आवश्यकता की उपेक्षा न करे। प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकार मान लिए जाने के बाद तो यह आशा की ही जानी चाहिए कि अन्य क्षेत्रों में सरकारी खर्च में कमी से जो धन बचेगा, सरकार उसे महिला शिक्षा पर खर्च करेगी।

आर्थिक स्वावलंबन

यह बात दोहराने की आवश्यकता नहीं कि भारतीय समाज में पुरुषों की तुलना में महिलाओं को हीन और दुर्बल माना जाता है अर्थात हर मामले में लड़कियों के साथ भेदभाव किया जाता है। यह भेदभाव शहरों की तुलना में गांवों में काफी अधिक दिखाई देता है क्योंकि ग्रामीण परिवेश में सामंतवादी व्यवस्था अभी जीवित है जिसमें औरत को व्यक्ति नहीं 'वस्तु' माना जाता है और शिक्षा तथा जागरूकता की कमी के चलते औरतें अपने प्रति होने वाले भेदभाव व अन्याय का प्रतिकार नहीं कर पातीं। इसका एक मुख्य कारण यह है कि औरत आर्थिक दृष्टि से पुरुषों पर निर्भर रहती आई है। जैसे–जैसे महिलाएं विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार पाकर स्वावलंबी बन रही हैं, उनके प्रति भेदभाव घट रहा है। किंतु यह सकारात्मक

परिवर्तन बहुत ही धीमा है। आर्थिक स्वावलंबन के महत्व को समझते हुए सरकारी स्तर पर महिला रोजगार को बढ़ावा देने वाली अनेक योजनाएं शुरू की गई हैं जिनमें सीधे रोजगार देने के कार्यक्रमों के साथ महिलाओं को अपना काम–धंधा चलाने के योग्य बनाने के लिए विभिन्न शिल्पों तथा तकनीकों का प्रशिक्षण दिया जाता है। उदाहरण के लिए स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना के अंतर्गत गांवों के निर्धन परिवारों को कोई भी छोटा–मोटा उद्योग धंधा शुरू करने के लिए परियोजना के कुल खर्च का 30 प्रतिशत धन सहायता के रूप में दिया जाता है। इस योजना में कुल स्वरोजगारियों में 40 प्रतिशत महिलाएं होती हैं।

इसी प्रकार संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना नाम के एक अन्य कार्यक्रम के अंतर्गत निर्धन ग्रामीणों के लिए ऐसे कार्यक्रम शुरू किए जाते हैं जिनमें उन्हें वेतन वाले रोजगार मिल सकें। इसमें भी महिलाओं पर विशेष ध्यान देने का प्रावधान है। महिला और बाल विकास विभाग, केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड तथा समाज कल्याण बोर्डों द्वारा भी महिलाओं को प्रशिक्षण तथा काम–धंधा शुरू करने के लिए वित्तीय सहायता देने के अनेक कार्यक्रम चल रहे हैं। विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा भी महिला रोजगार के अनेक कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। कुछ स्वयंसेवी संगठन भी गांवों में लड़कियों को सिलाई–कढ़ाई के साथ–साथ आधुनिक तकनीकों, जैसेकि कंप्यूटर फोटोग्राफी, टेक्सटाइल डिजाइनिंग आदि का प्रशिक्षण दे रहे हैं जिससे वो आसपास के कस्बों या शहरों में नौकरी पा सकती हैं। परंतु अधिकतर ग्रामीण महिलाएं खेतों में या कुटीर उद्योगों में काम करती हैं। आर्थिक सुधारों के कारण बहुराष्ट्रीय कंपनियां तथा बड़ी–बड़ी भारतीय कंपनियां और बड़े उद्योग पनप रहे हैं। लघु व कुटीर उद्योगों पर ताले पड़ते जा रहे हैं। विदेशों से आयातित उत्पादों के सामने स्थानीय स्तर पर हस्तशिल्प से निर्मित वस्तुएं गुणवत्ता या लागत की दृष्टि से टिक नहीं पातीं और ऐसे उद्योग तथा उद्यम बड़ी तेज़ी से बंद हो रहे हैं। ऐसे में महिलाओं के लिए स्वरोजगार तो दूर वेतन वाले रोजगार के अवसर भी कम हो रहे हैं। इस प्रकार रोजगार यानी आर्थिक **स्वावलंबन के माध्यम से महिला सशक्तिकरण की गाड़ी मंजिल तक पहुंचने से पहले ही हिचकोले खाने लगी है। इस संकट की ओर योजनाकारों को गंभीरतापूर्वक ध्यान देना होगा नहीं तो महिला समानता का सपना पूरा नहीं हो पाएगा।**

स्वास्थ्य और सामाजिक स्तर

यह आम मान्यता है कि गांवों में दूध, दही, घी, ताजा सब्जियों तथा प्रदूषणरहित वातावरण

के कारण ग्रामीण लोग शहरी जनता की तुलना में अधिक स्वस्थ होते हैं। परंतु जहां तक महिलाओं के स्वास्थ्य का संबंध है, यह बात मिथ्या दिखाई देती है। पहली बात तो यह है कि गांवों की तीन चौथाई आबादी निर्धनता, निरक्षरता और अज्ञानता की शिकार है, जिससे उन्हें स्वास्थ्य के विभिन्न पहलुओं और चिकित्सा सुविधाओं की सम्यक जानकारी ही नहीं होती है और जिन्हें होती है वे गरीबी के कारण उनका लाभ नहीं उठा पातीं। योजना आयोग द्वारा जारी राष्ट्रीय मानव विकास रिपोर्ट के अनुसार भारत में 51 प्रतिशत से अधिक महिलाएं एनीमिया यानी रक्त की कमी से ग्रस्त हैं। गांवों में बाल मृत्युदर और प्रसव के समय औरतों की मृत्युदर बहुत ऊंची है। गांवों में निजी डाक्टर न के बराबर होते हैं क्योंकि भारी खर्च के बाद एमबीबीएस करने वाले युवक बहुत कम आय की आशंका के कारण गांवों में जाते ही नहीं हैं। प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र ग्रामीण स्वास्थ्य सेवा के आधारबिंदु हैं, परंतु उपभोक्तावाद की तेज हो रही लहर के कारण डाक्टरों में अमीर बनने की दृढ़ चाह के चलते ग्रामीण स्वास्थ्य और उपेक्षित होता जा रहा है। महिलाएं वैसे भी परिवार में महत्व की दृष्टि से सबसे अंतिम छोर पर रहती हैं। परिवार में उपलब्ध आहार के पहले हकदार पुरुष और लड़के होते हैं और उनसे बचा आहार व पौष्टिक पदार्थ लड़कियों व महिलाओं के हिस्से में आते हैं जिनसे लड़कियों व महिलाओं की सेहत बिगड़ती जाती है। घटती तथा बिगड़ती चिकित्सा सुविधाएं ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य की स्थिति को और बदतर बना रही हैं।

बढ़ती जनसंख्या के कारण सरकार के लिए यों भी पर्याप्त चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध कराना कठिन होता जा रहा है और रही–सही कसर नई आर्थिक परिस्थितियों से पूरी होने जा रही है क्योंकि शिक्षा की तरह स्वास्थ्य में भी सरकार का स्थान निजी क्षेत्र ले रहा है। इससे निर्धन ग्रामीण महिलाओं के सामने स्वास्थ्य और चिकित्सा का गंभीर संकट उभर रहा है। परिवार कल्याण या जनसंख्या नियंत्रण यों तो राष्ट्रीय दायित्व है, परंतु इसका अधिकतर बोझ महिलाओं को उठाना पड़ता है। गर्भ निरोधक उपाय महिलाएं ही अधिक अपनाती हैं क्योंकि पुरुषों की इच्छा ही ज्यादातर मामलों में हावी रहती है, जिनमें संतान प्राप्ति की इच्छा भी शामिल है। इसके अलावा लड़का पाने की चाह के कारण ग्रामीण महिलाएं बच्चे जनते रहने को विवश रहती हैं जिससे उनके स्वास्थ्य पर विपरीत असर पड़ता है। इन सभी परंपरागत बुराइयों में तो विशेष सुधार हुआ नहीं है लेकिन गर्भ में भ्रूण के लिंग का पता लगा लेने की आधुनिक तकनीक ने बच्चियों को जन्म से पहले ही मार देने की नई मुसीबत पैदा कर दी है। हमारे देश में पहले ही प्रति हजार पुरुषों के पीछे स्त्रियों की संख्या केवल 934 है जो विकसित देशों ही नहीं पाकिस्तान, बंगलादेश और श्रीलंका जैसे हमारे पड़ोसी विकासशील देशों से भी काफी कम है। अचरज की बात यह है कि भ्रूण परीक्षण की तकनीक उन राज्यों में ज्यादा लोकप्रिय है, जो आर्थिक और शैक्षिक दृष्टि से विकसित समझे जाते हैं। पैदा होने वाली बहुत–सी बच्चियां भी उपेक्षा और भेदभाव के कारण बचपन में ही काल का शिकार हो जाती हैं। यही कारण है कि 2001 की जनगणना के अनुसार 0–6 वर्ष के आयु वर्ग में 1,000 लड़कों पर 927 लड़कियां रह गई हैं। पंजाब, हरियाणा, गुजरात और महाराष्ट्र जैसे देश के सबसे संपन्न राज्यों के आंकड़े चौंकाने वाले हैं। तालिका–1 से ये स्पष्ट है कि यह अंतर गांवों के मुकाबले शहरों में अधिक है जो भ्रूण परीक्षण तकनीक के व्यापक इस्तेमाल की ओर संकेत करता है क्योंकि इस नामुराद वैज्ञानिक विधि का उपयोग शहरी लोग ही अधिक करते हैं।

तालिका–1
0–6 आयुवर्ग में 100 लड़कों पर लड़कियों की संख्या

राज्य	शहरी	ग्रामीण
पंजाब	789	795
हरियाणा	808	824
गुजरात	827	905
महाराष्ट्र	908	923
राष्ट्रीय	903	934

हालांकि केंद्र और राज्य सरकारों ने भ्रूण परीक्षण विधि पर प्रतिबंध लगाया है और ऐसे क्लिनिकों व डाक्टरों के खिलाफ कार्रवाई भी की जा रही है परंतु ऐसा लगता है कि इस नए संकट पर काबू पाने में सफलता नहीं मिल पा रही है क्योंकि हमारा समूचा समाज लड़के की चाह का मारा है। दहेज, लड़की को बोझ और पुत्र को स्वर्ग प्राप्ति का माध्यम मानने जैसी धार्मिक और सामाजिक परांपराएं भी लड़के की चाह को और मजबूत बनाती हैं।

यह सही है कि भ्रूण परीक्षण विधि अभी शहरों तक सीमित है। परंतु यह दुष्प्रवृत्ति बड़ी तेजी से कस्बों और गांवों की ओर बढ़ रही है। गांवों में एक बार इस विधि की जड़ें जम गईं, जिसकी संभावना कठिन नहीं है, तो लड़कों के मुकाबले लड़कियों के अनुपात में गिरावट काफी गंभीर हो जाएगी जिससे देश में कई तरह की सांस्कृतिक, सामाजिक समस्याएं सामने आ सकती हैं। गांवों में लड़का चाहने वाले लोगों की संख्या वैसे भी काफी ज्यादा है। इसलिए लड़कियों को बराबरी का दर्जा दिलाने की दिशा में काम कर रही संस्थाओं को अपनी गतिविधियों को गांवों तक ले जाने के प्रति अभी से सचेत हो जाना चाहिए।

जाहिर है शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और महिला समानता जैसे सभी पहलू एक–दूसरे से जुड़े हैं। नई उभरती चुनौतियों से इन पहलुओं पर पड़ रहे दबाव का मुकाबला अंततः स्वयं महिलाओं को करना है और इसके हथियार हैं– चेतना, स्वावलंबन, आत्मविश्वास और एकता। उन्हें उपलब्ध सुविधाओं तथा अधिकारों का पूरा लाभ उठाना चाहिए और अपने बल पर नई सुविधाएं खड़ी करनी चाहिए। उदाहरण के लिए **पंचायतों में आरक्षण से ग्रामीण महिलाओं को जो ताकत और अधिकार मिले हैं, उनका उपयोग करके वे अपनी पथरीली राहों को सुगम बना सकती हैं। लेकिन गांवों की औरतें क्योंकि अशिक्षित, कम जागरूक तथा दुर्बल हैं इसलिए शहरी और शिक्षित व जागरूक महिलाओं एवं संवेदनशील तथा प्रगतिशील पुरुषों को इस विशद प्रयास में सहयोग देना होगा।** ❑

(लेखक आकाशवाणी के समाचार सेवा प्रभाग में निदेशक हैं।)

मध्यप्रदेश के आदिवासियों की जीवनशैली में लघुवनोपज का महत्व

डा. अंजिला गुप्ता, डा. नीति जैन

वर्तमान में अनेकानेक शोधों के उपरांत लघुवनोपज संपदा की आर्थिक संभावनाओं पर विशेष प्रकाश पड़ा है। अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने अपने स्तर पर भी लघुवनोपजों के आर्थिक महत्व को स्वीकार किया है। इस आलेख में मध्य प्रदेश की ग्राम्य अर्थव्यवस्था में आदिवासियों द्वारा लघुवनोपज की संकलन प्रवृत्ति, उपभोग प्रवृत्ति तथा आय एवं रोजगार सृजन का विश्लेष्णात्मक अध्ययन किया गया है।

एशिया एवं प्रशांत वनक्षेत्रों में रहने वाली जनसंख्या परंपरागत रूप से बहुत प्राचीन काल से ही वनों से प्राप्त होने वाली लघुवनोपज के आर्थिक मूल्य एवं लाभों से परिचित रही है। शताब्दियों से इन क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासियों एवं ग्रामीण समुदाय के लिए लघुवनोपज की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रही है। अभी तक लघुवनोपजों का महत्व आधारभूत रूप से इन आदिवासियों की दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु रहा, परंतु अब परिस्थितियां परिवर्तित हो रही हैं। वर्तमान में अनेकानेक शोधों के उपरांत लघुवनोपज संपदा की आर्थिक संभावनाओं पर विशेष प्रकाश पड़ा है।

अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने अपने स्तर पर भी लघुवनोपजों के आर्थिक महत्व को स्वीकार किया है। खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) ने संतुलित वन विकास एवं संपोष्य वन प्रबंधन के संबंध में लघुवनोपज की भूमिका के महत्व को स्वीकार किया है। विशेष रूप से एशिया एवं प्रशांत महाद्वीप के लिए खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) द्वारा क्षेत्रीय कार्यालय स्थापित किए गए हैं जो लघुवनोपजों से संबंधित समंकों के संग्रहण एवं वनोपज के सफल प्रबंधन हेतु विशेष संबंधित क्षेत्रों का अध्ययन, वनोपज से संबंधित जानकारियों का प्रकाशन, सेमीनार एवं अधिवेशनों का आयोजन एवं लघुवनोपजों से संबंधित विभिन्न परियोजनाओं हेतु कार्यरत हैं।

लघुवनोपजों से संबंधित अध्ययन को यद्यपि वानिकीविदों ने कभी भी उपेक्षित नहीं किया परंतु इस वनोत्पाद को सामान्य रूप से काष्ठ उत्पादों की तुलना में केवल द्वितीयक या तृतीयक स्थान मिलता रहा है। परंपरागत रूप से वानिकीविद् एवं वन प्रबंधक, काष्ठ उत्पाद एवं इसके ऊंचे मूल्य से ही आकर्षित होते रहे हैं। वस्तुतः आधुनिक संरक्षणवादी वानिकीविदों एवं वैज्ञानिकों ने ही लघुवनोपज की नवीन 'आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक' संभावनाओं को पुनरान्वेषित किया है।

ऐतिहासिक दृष्टि डालने से स्पष्ट होता है कि पूर्व में ऐसे वनोत्पाद जिनका कोई महत्वपूर्ण तात्कालिक वाणिज्यिक मूल्य नहीं था लघुवनोपज के नाम से बुलाए गए। यद्यपि उस समय भी स्थानीय समुदाय के लिए ये लघुवनोपज अति महत्वपूर्ण थे। अब इन लघुवनोपजों को एक अधिक वैज्ञानिक एवं समुचित नाम **गैर–काष्ठ वनोत्पाद** दिया गया है।

एशिया एवं प्रशांत महाद्वीप के विकासशील देशों में लघुवनोपज आदिवासियों एवं स्थानीय समुदायों को उल्लेखनीय रोजगार अवसर एवं आय प्रदान करते हैं। स्थानीय समुदाय इन विविध वनोपजों का संग्रहण, प्रक्रियण एवं विपणन करते हैं। अपनी स्वयं की दैनिक आवश्यकताओं एवं भोजन हेतु भी आदिवासी एवं ग्रामीणजन शहद, मशरूम, फल, चिरौंजी, महुआ एवं अन्य अनेकानेक वनोपजों पर निर्भर रहते हैं।

इस आलेख में मध्य प्रदेश की ग्राम्य अर्थव्यवस्था में आदिवासियों द्वारा लघुवनोपज की संकलन प्रवृत्ति, उपभोग प्रवृत्ति एवं आय एवं रोजगार सृजन का विश्लेष्णात्मक अध्ययन किया गया है। अध्ययन में मंडला जिले की दो तहसीलों निवास एवं नैनपुर का चयन किया गया है। इसके लिए छः वनोपजों के आर्थिक अध्ययन हेतु उपर्युक्त तहसीलों से दो प्रतिनिधि गांवों काल्पी एवं घटेरी का चयन किया गया है। चयनित तहसील के दोनों गांवों से चालीस परिवारों का साक्षात्कार संरचित प्रश्नावली के द्वारा कर समंक संकलित किए गए। गांवों का चयन अध्ययन के अंतर्गत लिए गए लघु वनोपज पलाश बीज, महुआ फूल, महुआ बीज, तेंदूफूल, चार तथा तेंदूपत्ता की सघनता को ध्यान में रखकर किया गया है। चयनित परिवारों से पलाश बीज, महुआ फूल, महुआ बीज, तेंदूफल, चार तथा तेंदूपत्ता उत्पादन, संकलन, विपणन, आय परिवार की भागीदारी, कीमत एवं उपभोग से संबंधित प्रश्न के आधार पर सुनिश्चित प्रश्नावली के द्वारा सर्वेक्षण कार्य संपन्न किया गया।

प्रमुख लघुवनोपज मंडी काल्पी एवं घटेरी के सर्वेक्षण के आधार पर ज्ञात होता है कि दोनों गांवों में पलाश बीज के विक्रय का प्रतिशत सर्वाधिक है। घटेरी गांव में पलाश बीज के विक्रय का प्रतिशत (85 प्रतिशत) सर्वाधिक है। काल्पी तथा घटेरी दोनों गांवों में महुआ फूल के विक्रय का प्रतिशत सबसे कम है। घटेरी गांव में पलाश बीज, महुआ फूल, महुआ बीज, तेंदूफल एवं चार के विक्रय से प्राप्त आय का प्रतिशत क्रमशः 7.8 प्रतिशत, 6.3 प्रतिशत, 7.8 प्रतिशत, 4.4 प्रतिशत, 1.2 प्रतिशत, 80 प्रतिशत है। काल्पी एवं घटेरी गांव में चार के विक्रय से प्राप्त आय का प्रतिशत (80 प्रतिशत) सर्वाधिक व समान है। जबकि घटेरी गांव में तेंदूफल के विक्रय से प्राप्त आय का प्रतिशत (1.2 प्रतिशत) सबसे कम है। घटेरी गांव में भी तेंदूफल के विक्रय से प्राप्त आय का प्रतिशत कम होने का

कारण कुल संग्रहण के अधिकांश भाग का उपभोग करना है।

लघुवनोपज से रोजगार सृजन

लघुवनोपज को काष्ठ उत्पाद के बाद दूसरा स्थान प्रदान किया गया है। काष्ठ उत्पाद को मुख्य एवं लघुवनोपज को गौण उपज भी कहते हैं। भारत के वनों से प्राप्त आय का लगभग 60 प्रतिशत लघुवनोपज से प्राप्त होता है। गैर सरकारी आंकड़ों के अनुसार लघुवनोपज से प्राप्त आय 60 प्रतिशत से भी अधिक है। भारत के 50 मिलियन से भी अधिक आदिवासियों को लघुवनोपज से वस्तु रूप में अथवा नकद आय प्राप्त होती है। लघुवनोपज अधिकांशतः स्थानीय लोग उपयोग करते हैं। यही स्थानीय लोग लघुवनोपज का संग्रहण कर उसका विक्रय भी करते हैं।

भारतीय वानिकी क्षेत्र में लघुवनोपजों से लगभग 70 प्रतिशत से अधिक रोजगार सृजन होता है। वाणिज्यिक लघुवनोपज प्रतिवर्ष 3 मिलियन से भी अधिक आय प्रदान करती है। लघुवनोपज लाखों ग्रामीण भारतीयों को रोजगार के अवसर प्रदान करती है। ग्रामीण यदि लघुवनोपज का व्यवसाय न करते तो वे कृषि श्रमिक या गरीब शहरी की तरह जीवनयापन करने पर विवश होते हैं। इसके अतिरिक्त महत्वपूर्ण संख्या में लोग लघुवनोपज के प्रक्रियण एवं विपणन में लगे हुए हैं, फिर भी लघुवनोपज ग्रामीण रोजगार क्षेत्र में न्यूनतम मजदूरी सृजित करता है। अधिकांश प्रांतों में लघुवनोपज के अतिरिक्त अन्य क्षेत्र न्यूनतम मजदूरी 30–40 रुपये प्रतिदिन कमाते हैं, जबकि अधिकांशतः लघुवनोपज संग्रहणकर्ता को मात्र 5–15 रुपये प्रतिदिन की मजदूरी प्राप्त होती है। कम मजदूरी यह प्रदर्शित करती है कि वनों का प्रबंधन गैर–जिम्मेदार है एवं उत्पादकता न्यून है। प्रदेश की व्यापार नीतियों ने एवं व्यक्तिगत क्रेता ने लघुवनोपज की संभावनाओं का आकलन कमतर किया है। (पोफेन बर्गर, 1994) तालिका–1 से लघुवनोपज द्वारा रोजगार सृजन को स्पष्ट किया गया है।

वनोपजों से संबंधित समस्याएं

लघुवनोपज की विभिन्न प्रक्रियाओं में कुछ समस्याएं निहित हैं। इन समस्याओं का निराकरण कर लघुवनोपज की महत्ता को अक्षुण्ण रखा जा सकता है तथा आदिवासी अर्थव्यवस्था में लघुवनोपज की भूमिका को प्रभावपूर्ण बनाया जा सकता है।

अपनी गोद में करोड़ों की संपदा समाहित किए हुए प्राकृतिक संपदा से परिपूर्ण मध्य प्रदेश के कुल क्षेत्रफल का 30.5 प्रतिशत भू–भाग वनावरण से आच्छादित है। वन संपदा में जहां लघुवनोपज एवं जड़ी–बूटियों की भूमिका दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है वहीं विदेशों में इसके प्रति बढ़ता आकर्षक एवं मांग से बहुमूल्य विदेशी मुद्रा प्राप्त करने का यह एक महत्वपूर्ण स्रोत बनता जा रहा है। दुखद पक्ष यह है कि इन जड़ी–बूटियों एवं वनोपज के समीप रहने वाले उसके लाभ के वास्तविक हकदार अनेक प्रयत्नों के पश्चात् भी शोषण का शिकार हो रहे हैं।

लघुवनोपज के बारे में एक चिंता आज समाज में बुद्धिजीवियों को उद्वेलित किए हुए हैं जो इसकी अस्मिता व अस्तित्व को लेकर है। प्रदेश सरकार ने अराष्ट्रीयकृत लघुवनोपज संग्रहण को नैसर्गिक अधिकार

तालिका – 1
भारत में लघुवनोपज से रोजगार सृजन

उत्पाद	संग्रहण अवधि	रोजगार (हजार व्यक्ति प्रतिवर्ष)	
		वर्तमान	उत्पादन क्षमता
रेशे	मार्च–मई	4.4	79
रोएंदार रेशे	मई–जून	10	15
घास	अक्तूबर–मार्च	1200	1800
बांस	सतत्	48.3	110
तात	सतत्	0.7	1.05
लेमन ग्रास तेल	मई–जून	21.7	32.55
गरी तेल	अक्तूबर–नवंबर	1.5	2.25
तिरवाड़ी तेल	सतत्	2.32	3.48
दालचीनी तेल	सतत्	0.05	0.07
चंदन तेल	सतत्	1.5	2.25
देवदार तेल	सतत्	0.15	0.23
चीड़ तेल	सतत्	NA	100
महुआ बीज	अप्रैल–जून (उ.) अक्तू.–नवं. (द.)	28.6	163
नीम बीज	मई–जून	1	70
साल बीज	अप्रैल–जून	53	1,123
कोकूम बीज	मई–जून	0.167	0.7
खाकन बीज	मई–जून	0.570	15.3
नहोर बीज	मई–जून	NA	1.9
अंडी बीज	अप्रैल–जून एवं सित.–नव.	NA	NA
करंज बीज	जून–अक्तूबर	19	37
कुसुम बीज	जून–जूलाई	6.7	30
बबूल की छाल	सतत्	4.57	8.3
अवेरम छाल	सतत्	5	7.5
वेटल छाल	सतत्	5	7.5
हर्रा	जन.–मार्च	6.6	9.9
कराया गोंद	अप्रैल–जून	50	75
खट्टी एवं बबूल गोंद	अप्रैल–जून	7	10.5
रेजिन	मार्च–जून	30	60.2
लाख एवं लाख उत्पाद	अक्तू.–जन. एवं अप्रैल–जूलाई	7.3	10.95
टसर रेशम	अगस्त–दिसंबर	1.5	9.5
तेंदूपत्ता	अप्रैल–जून	74.9	107
सर्पगंधा	परिवर्तनशील	16	42.67
कुथ	अक्तूबर	16	26.67
सिनकोना	परिवर्तनशील	23.635	33.335
खाद उत्पाद	परिवर्तनशील	NA	NA

स्रोत : 'नॉन–वुड फॉरेस्ट प्रोडक्टस इन एशिया', रापा, बैंकाक, 1994

मानते हुए आदिवासियों/वनवासियों के हितार्थ खुली छूट दी हुई है, लेकिन इस छूट के दूरगामी परिणाम कितने घातक हो सकते हैं, कहा नहीं जा सकता। अभाव एवं निर्धनता ने जिस निर्ममतापूर्वक तरीके से इसके विदोहन के लिए प्रेरित किया है उसे यदि समय रहते न नियंत्रित किया गया तो समाज का बहुसंख्यक समुदाय मूल्यवान बहूपयोगी औषधियों से वंचित हो जाएगा।

प्राथमिक वनोपज सहकारी समिति के पदाधिकारियों का वनोपज व्यापार के लिए जो वाणिज्यिक दृष्टिकोण होना चाहिए, उसका सर्वथा अभाव भी वनोपज संग्रहण में एक बड़ी बाधा है। इन सहकारी समितियों में एक बड़ी राशि कमीशन के बतौर आज भी समिति खाता में है, किंतु इसका उपयोग वनोपज के संग्रहण में समिति पदाधिकारियों द्वारा नहीं किया जा रहा है।

प्राथमिक वनोपज सहकारी समिति के द्वारा संग्रहित वनोपज के सुव्यस्थित विपणन की व्यवस्था वर्तमान में उपलब्ध नहीं है तथा इसके लिए उन्हें मुख्य बाजार की मांग पर निर्भर रहना पड़ता है। इससे कभी–कभी समितियों को आर्थिक क्षति भी उठानी पड़ सकती है। पंजीकरण विभिन्न वनोपज के लिए किया जाए, यह भी आवश्यक है। कुछ वनोपज का व्यापार समिति स्वयं कर सकती है, शेष वनोपज का शुल्क निर्धारित कर समर्थन मूल्य पर संग्रहण करने के लिए व्यापारियों को समिति दे सकती है। इस पद्धति से समिति स्तर लघुवनोपज के व्यापार में जहां संग्रहणकताओं को न्यायसंगत संग्रहण मूल्य प्राप्त होगा, वहीं दूसरी ओर समिति को आर्थिक लाभ भी होगा। यदि उपर्युक्त प्रकार से समिति का क्रियान्वयन सफलतापूर्वक कर लिया जाए तो लघुवनोपज संग्रहणकर्ता आदिवासी जनसंख्या को भी इसके अधिकतम लाभ प्राप्त हो सकेंगे।

प्रमुख बहूपयोगी वनोपज

पलाश बीज : पलाश बीज सर्वाधिक सहजता से उपलब्ध होने वाली बहूपयोगी वनोपज है। इसके संग्रहण एवं विक्रय में आदिवासियों को किसी भी प्रकार की विशेष समस्या का सामना नहीं करना पड़ता। पलाश बीज एवं पत्ते का वाणिज्यिक उपयोग महत्वपूर्ण होने के कारण इसकी मांग हमेशा बनी रहती है। पलाश बीज का विक्रय सौ प्रतिशत बिचौलियों के द्वारा होता है। अतः आदिवासी की मेहनत का सही मूल्य संग्रहणकताओं को प्राप्त नहीं हो पाता।

महुआ फूल : महुआ फूल लघुवनोपज पर आश्रित जनसंख्या हेतु सर्वाधिक महत्वपूर्ण लघुवनोपज है। महुआ फूल के संग्रहणकर्ता के संदर्भ में विचित्र विरोधाभास दृष्टिगोचर होता है कि नगद आय की प्राप्ति हेतु तथा भंडारण के अभाव के कारण संग्रहणकर्ता इसे आधी कीमत पर विक्रय करते हैं एवं कुछ समय उपरांत पुनः इसे दुगुनी कीमत पर क्रय करते हैं। यह क्रय उन्हें महुआ फूल की निरंतर आवश्यकताओं के कारण करना पड़ता है।

महुआ बीज : महुआ बीज का संगहण इसे पकने से पूर्व ही कर लिया जाता है। इस स्थिति में बीज में तेल की मात्रा पर्याप्त नहीं होती है अतः संग्रहणकताओं को उचित मूल्य प्राप्त नहीं होता। परस्पर प्रतिद्वंद्विता, धन के अभाव एवं सीमित वनोपज के कारण यह प्रवृत्ति पाई जाती है।

तेंदूफल : 90 प्रतिशत तेंदूफल का उपयोग शीघ्रातिशीघ्र कर लिया जाता है। शेष 10 प्रतिशत तेंदूफल का स्थानीय बाजार में विक्रय हो जाता है। तेंदूफल गर्मी से शीघ्र ही नष्ट (24 घंटे में) हो जाते हैं अतः इसको अधिक समय तक सुरक्षित नहीं रखा जा सकता।

चार : चार को तराजू से तोलकर बरहैया (एक किलो के लिए) एवं कुरो (चार किलो के लिए) से बिचौलियों या अन्य व्यक्ति द्वारा तोल कर ली जाती है। इससे तोल में ज्यादा मात्रा जाने की संभावना रहती है। परिणामस्वरूप संग्रहणकर्ताओं को आर्थिक नुकसान होता है। इस उपकरण का उपयोग बिचौलिए या अन्य व्यक्ति स्वयं ही करते हैं। चार की यह प्रजाति धीमी गति से बढ़ने वाली है। इसकी सबसे बड़ी कमी यह है कि इसमें फल व फूल दोनों पौधे के रोपण से आठ–दस साल के पश्चात ही आते हैं।

तेंदूपत्ता : संग्रहणकर्ता तेंदूपत्ता की गड्डियां लेकर संग्रहण केंद्रों में जाते हैं या बिचौलियों को विक्रय करते हैं। प्रत्येक सौ गड्डी पर पांच गड्डी अतिरिक्त यह कहकर मांगी जाती हैं कि गड्डियों में पत्ते कम हैं या कटे–फटे पत्ते संग्रहणकर्ता ने लगाए हैं। संग्रहणकर्ताओं को मजबूर होकर पांच गड्डी प्रत्येक सौ गड्डी पर देनी पड़ती हैं। आदिवासी के साक्षर न होने से गड्डी बनाने एवं विक्रय प्रक्रिया में असुविधा होती है।

इस प्रकार उपर्युक्त विश्लेषण स्पष्ट करता है कि लघुवनोपज के संग्रहण, उपभोग, विक्रय एवं आय सृजन से संबंधित समस्याओं का स्वरूप क्या है एवं वनोपजवार समस्याओं की विशिष्टता किस प्रकृति की है।

अनुशंसाएं

लघुवनोपज आदिवासियों एवं वन क्षेत्र के गरीब वर्ग के उपयोग, विपणन तथा आर्थिक विकास में अहम भूमिका अदा करते हैं। इसकी कमी अथवा अनियमित विदोहन एवं शोषण आदिवासी अर्थव्यवस्था की स्वतंत्र जीवनचर्या को प्रत्यक्षतः प्रभावित करता है। लघु वनोपज के संग्रहण एवं विपणन से रोजगार के व्यापक अवसर उपलब्ध हो सकते हैं। **संग्रहण और वर्गीकरण की व्यवस्थित वैज्ञानिक पद्धति प्रारंभ कर इसके उत्पादन एवं संग्रहण को बढ़ाने की आवश्यकता है। लघुवनोपज कार्यक्रमों में आदिवासियों के अर्थपूर्ण सहयोग की ओर सकारात्मक रुख अपनाना होगा, ताकि वे केवल श्रमिक ही न बने रहें अपितु समूचे प्रयास में सक्रिय भागीदारी की भूमिका निभा सकें, जिनका उद्देश्य उनकी आर्थिक स्थिति सुधारना है।**

वनसंपदा के अध्ययन में वनोपज का संगहण अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वनोपज की सुरक्षा एवं वनोपज के संग्रहण के लिए कुशल संग्रहणकर्ता आवश्यक है। तेंदूपत्ता, हर्रा, महुआ, वन्य फलों आदि को उचित समय पर एकत्रित करना चाहिए जिससे वे वनों में वर्षा, धूप, आंधी–तूफान आदि से नष्ट न होने पाएं। इस वनोपज को संग्रहणकर्ताओं द्वारा एकत्र किया जाता है। ये संग्रहणकर्ता उचित समय पर सही कीमत पर उनकी बिक्री करते हैं। इस हेतु संग्रहणकर्ता तथा उनकी कुशल व्यवस्था आवश्यक है। वर्तमान में आदिवासी संग्रहणकर्ता गैर–प्रशिक्षित एवं अकुशल होते हैं। यदि विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों द्वारा उनकी कुशलता बढ़ाई जा सके तो संग्रहण की मात्रा बढ़ाई जा सकती है।

एशिया प्रशांत क्षेत्र के भारत सहित अनेक देशों में लघुवनोपज बहुत महत्वपूर्ण है। इन देशों की वनोपज उपलब्धता एवं महत्व की श्रेणी के मध्य उल्लेखनीय समानता है। यदि इस क्षेत्र के इन देशों के मध्य लघुवनोपज से संबंधित व्यापार एवं विभिन्न औद्योगिक प्रयोगों को प्रोत्साहित किया जाए तो संबंधित देश को

अतिरिक्त आय एवं रोजगार के रूप में इसके लाभ प्राप्त हो सकते हैं। इस प्रक्रिया से लघुवनोपज का संग्रहण एवं विक्रय करने वाला आदिवासी या वनवासी भी लाभान्वित होगा।

पलाश बीज, महुआ फूल, महुआ बीज, तेंदूपत्ता, तेंदूफल एवं चार के संग्रहण एवं विपणन व्यवसाय में आय एवं रोजगार की व्यापक संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए सर्वप्रथम इसकी प्रयोग विधि व औषधीय गुण–दोषों से आम नागरिक को परिचित कराने के प्रयास होने चाहिए। इससे व्युत्पन्न मांग का सृजन होगा, जो संग्रहणकर्ताओं की आर्थिक प्रगति में सहायक हो सकेगा।

आदिवासियों को एक प्रशिक्षण व आवश्यक किट्स उपलब्ध कराकर यदि विकास प्रक्रिया की ओर उन्मुख कर दिया जाता है तो एक वर्ष में अपेक्षाकृत अधिक रोजगार प्राप्त हो सकता है। व्यापारिक वन सामुदायिक वन के चारों ओर फैले होने चाहिए जिससे आदिवासियों को अधिक रोजगार के अवसर प्राप्त होंगे। इसके अतिरिक्त कच्चे माल को एकत्रित करने वाले संग्रहणकर्ताओं को उचित पारिश्रमिक प्रदान करना होगा।

प्रक्रियण एवं मूल्य संवर्धन आदिवासियों के लिए रोजगार का एक अच्छा स्रोत सिद्ध हो सकता है। गरीबी हटाने, वनों को शोषण से बचाने के लिए एवं व्यापार को बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि लघुवनोपजों के विकास, संग्रहण और प्रक्रियण में आदिवासियों को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

स्थानीय आदिवासी तथा वनों का पारस्परिक संबंध है। ये वनों के विकास में सहभागिता की भूमिका निभाते हैं। वर्तमान वनों को बचाना एवं नए वनों का विकास तभी संभव है जब स्थानीय व्यक्तियों को वनोपजों के महत्व के बारें में जागरूक किया जाए।

लघुवनोपज के संग्रह को भी अधिक वैज्ञानिक आधार देने की आवश्यकता है जिससे कि समाज के दीर्घकाल हितों तथा व्यक्ति के तात्कालिक हितों के मध्य तालमेल स्थापित हो सकेगा। यदि इस व्यवस्था में से ठेकेदारों को निकाल दिया जाएगा तो इस नितांत भिन्न लगने वाले हितों के समीप आने में बहुत सहायता मिलेगी।

विशिष्ट वनोपजों हेतु अनुशंसाएं

सर्वेक्षण से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर लघुवनोपज के संग्रहण में पुरुष एवं महिलाओं में से महिलाओं की भागीदारी संग्रहण एवं विपणन में सर्वाधिक है। **लघुवनोपज (संग्रहण व विपणन) महिलाओं का विशेष क्षेत्र बन सकता है अतः लघुवनोपज से संबंधित महिलामंडल आदि का निर्माण किया जाए। महिलाओं की भागीदारी का अधिक प्रतिशत महिलाओं के लिए लघुवनोपज क्षेत्र में नई संभावनाओं की ओर इंगित करता है।**

अध्ययन में सम्मिलित छः लघुवनोपजों से संबंधित विशिष्ट सुझाव इस प्रकार हो सकते हैं–

- महुआ के वृक्ष गैर–संरक्षित वन एवं दोनों में पाए जाते हैं। संयुक्त वन प्रबंधन के अंतर्गत उन आदिवासियों को ये वन क्षेत्र वितरित किए जा सकते हैं जोकि भूमिहीन व गरीब हैं व जिनके स्वयं के वृक्ष नहीं होते। स्थानीय संस्थाएं जैसे वन संरक्षण समिति, ग्रामीण वन समिति एवं ग्रामसभा उन्हें पहचानने एवं पुनर्वितरण में सहायता कर सकती है।
- महुआ वृक्षों का ग्राम स्तर पर आकलन किया जाना चाहिए ताकि पता लगाया जा सके कि ग्राम में महुआ वृक्षों का उपलब्धता स्तर क्या है एवं वृक्षों की संख्या कितनी है जैसे फूलों व बीज की कटाई इत्यादि। जैव विविधता के अंतर्गत पादपों का संग्रह एवं प्राकृतिक पैदावार की जानी चाहिए।
- महुआ के फूल का संग्रहण करने पर कई बार वे नष्ट हो जाते हैं, जिसके लिए उपयुक्त संग्रहण तकनीक प्रयोग की जानी चाहिए। जिससे उसके संग्रहण प्रक्रिया के समय में होने वाली हानि को रोका जा सके। समिति द्वारा संग्रहण एवं विपणन के महुआ में वृक्षों का उचित मूल्य जोड़ा जा सकता है एवं सदस्य बिना हानि के दोबारा क्रय कर सकते हैं।
- उत्पादक संघ एवं महिलामंडल का गठन करके गांव की महिलाएं महुआ के वृक्षों के द्वारा आय अर्जित कर सकती हैं। महुआ के वृक्ष की बहुलता व दीर्घ अवधि को देखकर ग्रामीण स्तर पर उद्योगों का विकास किया जाना चाहिए। महुआ के अच्छे उत्पादन के लिए उसके अच्छे बीजों का चयन किया जाना चाहिए ताकि उसमें से अच्छे फूल व फल प्राप्त हो सकें। इसके अतिरिक्त महुआ से अच्छे फूल एवं बीज प्राप्त करने के लिए उसको विभिन्न–विभिन्न समूहों में बांटा जाना चाहिए। महुआ के रखरखाव का उत्तम तरीका यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में महुआ से उचित कीमत प्राप्त करने के लिए महुआ की उचित भंडारण विधि का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- तेंदूफल गर्मी से नष्ट हो जाता है, अतः शासन को चाहिए कि तेंदूफल को शीत संरक्षण गृहों में रखकर तथा ग्रामीणों द्वारा इसे खरीदकर स्थानीय लोगों की आय में वृद्धि का उपाय प्रस्तुत करे।

घटेरी गांव में तेंदूपत्ता के संकलन में महिलाओं की भागीदारी का प्रतिशत अधिक होते हुए भी संकलन कम है। अतः यहां भी ट्रिप की संख्या बढ़ाकर तथा ट्रिप के समय में वृद्धि कर संकलन की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है।

काल्पी गांव में संग्रहकर्ताओं की संख्या, अभिरूचि एवं जागरुकता, इत्यादि में वृद्धि कर विचलन के प्रतिशत में कमी लाई जा सकती है फलस्वरूप तेंदूपत्ता के संकलन की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है।

यू एन ओ द्वारा भारत सरकार के पर्यावरण मंत्रालय को दो हवाई जहाज वनों में बीजों के छिड़काव के लिए दिए गए हैं। परंतु इसका उपयोग सरकारी तंत्र अपने भ्रमण या आराम के लिए अधिक करता है बीजों के छिड़काव के लिए कम। संयुक्त राष्ट्र संघ को मिथ्या आंकड़े प्रेषित कर दिए जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा सघन वनीकरण परियोजना पर कार्य किया जा रहा है। इसका प्रयोग राजस्थान व हिमाचल में काफी सफल रहा। परंतु मध्य प्रदेश में इस संबंध में बिल्कुल भी कार्य नहीं हुआ है। यदि शासन चाहे तो कृत्रिम रूप से वनोपज की वृद्धि के लिए बीजों का छिड़काव या वृक्षारोपण कर सघन वनीकरण को प्रोत्साहित कर सकता है। इससे उपज तथा उत्पादकता अधिक होगी एवं रोजगार की संभावना बढ़ेगी। पर्यावरण प्रदूषण के अवशोषक के रूप में जामुन, कनेर, पलाश, तेंदूपत्ता, चार के पौधों को श्रेष्ठतम् माना जाता है। ये वनोपज 'वनीकरण कार्यक्रम' के अंतर्गत विकसित होकर पर्यावरण संरक्षण के साधन के रूप में भी कार्य कर सकते हैं। ❑

(लेखिका द्वय क्रमशः आचार्य एवं अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, गुरु घासीदास वि.वि. बिलासपुर (छ.ग.) तथा सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र), माता गुजरी महिला महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.) हैं।)

राजस्थान में धार्मिक पर्यटन के विकास की संभावनाएं

डा. धनपत सिंह जैन

''पधारो म्हारे देश'' और ''नैणा नेह धणैर'' - राजस्थानी भाषा के आत्मीयता उद्धेलित करते हुए ये उद्घोष तभी साकार हो सकते हैं यदि हम राज्य के विकास के लिए सकारात्मक दृष्टि से विचार करें। राजस्थान की गौरवमयी धार्मिक पर्यटन संपदा आर्थिक और सात्विक विकास की प्रतीक है किंतु इस दिशा में अभी तक विशेष प्रयास नहीं हुए हैं। धार्मिक पर्यटन की विराटता के नजरिए से राज्य में पर्यटन के इस नए पहलू को सशक्त बनाए जाने की प्रबल आवश्यकता है।

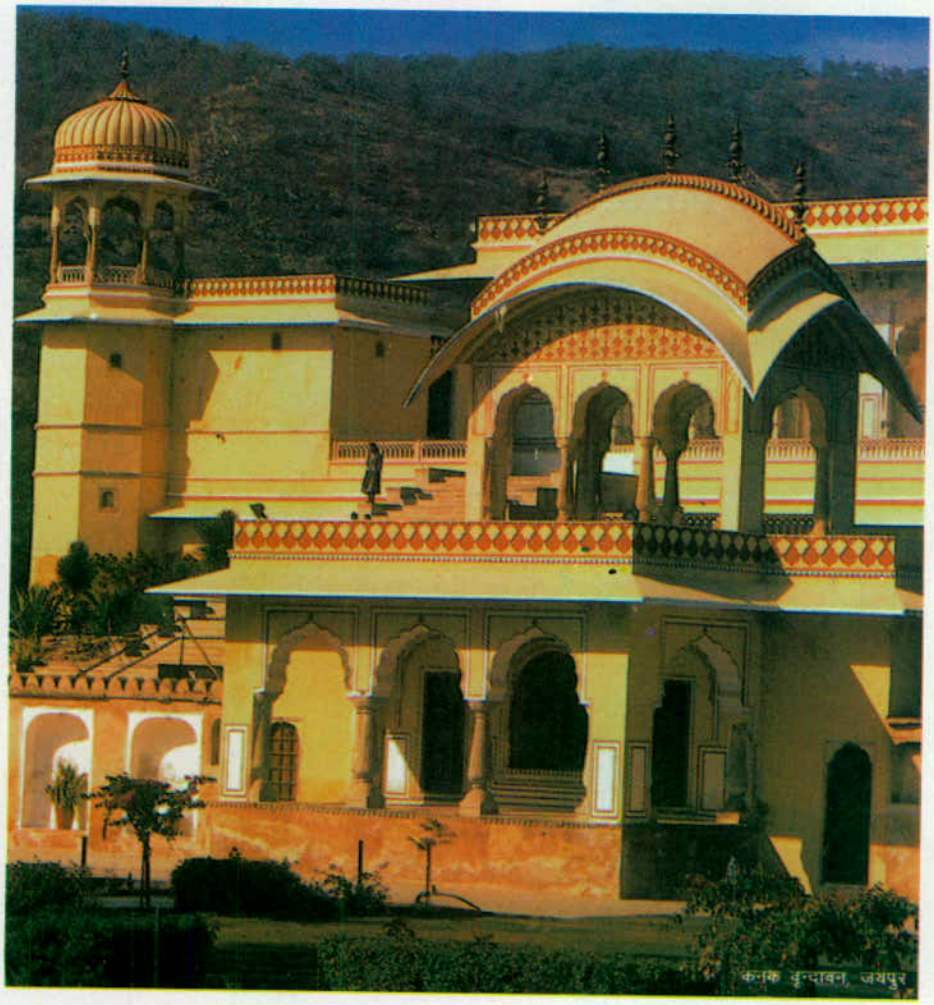
कनक वृन्दावन, जयपुर

पर्यटन उत्साही लोगों का प्रयोजनवश यात्रा व्यवहार है। जब व्यक्ति किसी स्थान विशेष पर विद्यमान विलक्षणताओं और विशिष्टताओं के विषय में सुनता या पढ़ता है तो अनायास ही उसके मन में उसको जानने की ललक उत्पन्न होती है। यही ललक उसे उन प्रभावोत्पादक घटकों की ओर प्रस्थानार्थ विवश करती है तो इसी प्रयास के साथ पर्यटन की प्रवृत्ति पैदा होने लगती है। पर्यटन नानाविध प्रयोजनों के साथ होता रहा है। पर्यटकों/सैलानियों के मन में किसी स्थान विशेष पर विद्यमान प्रकृति, संस्कृति, नागरिक जीवनशैली, विरासत, रोमांच के प्रति उत्कंठा और इसे संतुष्ट करने का प्राचीनकाल से प्रचलित मानव व्यवहार ही पर्यटन है जिसके प्रमाण देशाटन, पर्यटन और तीर्थाटन के रूप में लिपिबद्ध हैं।

ऐतिहासिक प्रमाणों से ज्ञात है कि पर्यटन अनेक परिप्रेक्ष्यों में होता आ रहा है। कौन पर्यटक किस परिप्रेक्ष्य से यात्रा करते हैं, यह उनकी प्रकृति एवं प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। मानवीय प्रवृत्ति और प्रकृति में अंतर के कारण ही पर्यटन विरासतीय, रोमांचक, प्रेमप्रसंग, व्यापारिक, स्वास्थ्य लाभ, शैक्षणिक आदि प्रयोजनों से होता आ रहा है। पर्यटन का एक ऐसा भी स्वरूप विद्यमान है जो प्राचीन तो है ही, साथ में पर्यटन के अन्य स्वरूपों से सर्वथा भिन्न है। पर्यटन के इस स्वरूप को धार्मिक और आध्यात्मिक पर्यटन के रूप में माना जाता रहा है। यह पर्यटन स्वरूप वास्तव में अतुल्य, अद्वितीय और मानवीय प्रवृत्ति और प्रकृति में सात्विक तत्वों की विद्यमानता का प्रतीक है। तीर्थाटन एवं तीर्थयात्रा धार्मिक

पर्यटन के मौलिक नाम हैं। यदि धार्मिक पर्यटन के स्वरूप, प्रकृति, परिणाम और परिप्रेक्ष्य का गहराई से अध्ययन किया जाए तो ज्ञात होता है कि यह पर्यटन अत्यंत प्रभावोत्पादक और शाश्वत महत्ता वाला है। यह पर्यटन उन धर्मस्थलों और धार्मिक अनुष्ठानों से सरोकार रखता है, जहां आने वाला हर सैलानी तीर्थयात्री के रूप में आत्मावलोकन, प्रेक्षाविचार, आत्मशोधन और प्रायश्चित भाव से पहुंचता है। परिणामस्वरूप पर्यटक स्वकेंद्रित, आत्मानुशासित, स्वनिर्देशित होता हुआ सहचर्य, सेवा, सद्विचार, सद्भाव, संस्कारवृत्ति और समर्पण की ओर प्रवृत्त होता है। सही अर्थ में ये धर्म एवं अराधनास्थल श्रृद्धा और विश्वास के मूल केंद्र तो हैं ही, साथ में मानव, परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व निर्माण के सशक्त माध्यम भी साबित हो रहे हैं।

भारत धर्मप्रधान और धर्मनिरपेक्ष देश है। प्राचीनकाल से ही यहां धार्मिक व आध्यात्मिक तत्वों की बहुलता रही है। इसी कारण यहां कण–कण में ईश्वरीय तत्व होने की मान्यता आज भी बलवती है। प्रयाग, बद्रीनाथ, केदारनाथ, हरिद्वार, ऋषिकेश, वाराणसी, अमरनाथ, जगन्नाथपुरी आदि स्थानों के नाम लेते ही धार्मिक भावों की शृंखला प्रवाहमान होने लगती है। इतना ही नहीं भारत का हर राज्य और राज्य का हर प्रांत भारतीय धार्मिक संदर्भों को प्रस्तुत कर रहा है। राजस्थान भारत का वह प्रदेश है जहां ईश्वर ने भले ही हरियाली का उपहार नहीं दिया हो, परंतु इसे जो विरासतीय विराटता प्रदान की है, वह अपने आप में अतुल्य है। यह सही है कि राजस्थान संपूर्ण भारत में पर्यटन के सभी परिप्रेक्ष्यों को समाए हुए है। यहां की मरुसंस्कृति, इतिहास, सामाजिक गतिविधियां, नागरिक जीवनशैली तो वैभवपूर्ण है ही, साथ में यहां धार्मिक परिप्रेक्ष्यों का महत्व और वैभवपूर्ण इतिहास किसी से कम नहीं है। पर्यटन वैभव की विराटता के कारण ही यह प्रदेश हर सैलानी का गंतव्य है।

तालिका–1

क्र.सं.	धार्मिक पर्यटन स्थल	स्थान
1.	नाकोड़ा जैन मंदिर (अद्भूत शिल्पकला)	नाकोड़ा (बाडमेर)
2.	ब्रह्मा मंदिर (विश्व में एकमात्र), सरोवर	पुष्कर (अजमेर)
3.	भांडासर, लक्ष्मीनाथ, नागनेची, रतनबिहारी, नाटेश्वर मंदिर	बीकानेर
4.	करणी माता का मंदिर (चूहों वाला)	देशनोक (बीकानेर)
5.	गुरु जम्बेश्वर मंदिर	मुकाम (बीकानेर)
6.	गुरु जसनाथ मंदिर (अग्नि नृत्य के लिए प्रसिद्ध)	कतरियासर (बीकानेर)
7.	सांख्य दर्शन के प्रतिपादक मुनि कपिल का आश्रम	कोलायत (बीकानेर)
8.	सालासर हनुमान जी	सालासर
9.	ख्वाजा मुइनुद्दीन हसनचिश्ती की दरगाह व वारह मंदिर	अजमेर
10.	लक्ष्मीनारायण मंदिर, गलता जी मंदिर	जयपुर
11.	जगदीश मंदिर, एकलिंग जी मंदिर	उदयपुर
12.	चौमुखा जैन मंदिर	रणकपुर
13.	गुरु शिखर, देलवाड़ा (शिल्पकला का बेजोड़ नमूना)	माउंट आबू
14.	श्री भैरव धाम	सिरोही
15.	श्रीनाथ जी मंदिर	नाथद्वारा (उदयपुर)
16.	ओसियां मंदिर (शिल्पकला का बेजोड़ नमूना)	ओसियां (जोधपुर)
17.	महावीर जी	महावीर जी
18.	चंद्रभागा मंदिर	हाड़ौती
19.	रामदेव जी मंदिर (लोकदेवता)	रामदेवरा
20.	केशव मंदिर	केशरियोपाटन
21.	सूर्य मंदिर	झालरापाटन
22.	सोमनाथ मंदिर	डूंगरपुर

विगत वर्षों का रिकार्ड है कि भारत भ्रमणकर्ताओं में से हर तीसरा पर्यटक राजस्थान की ओर आकृष्ट होता है और 3 से 4 दिन ठहरकर नानाविध पर्यटन प्रयोजनों की पूर्ति करता है। यदि हम राजस्थान पहुंचने वाले पर्यटकों के प्रयोजनों का विश्लेषण करें तो ज्ञात होता है कि शत–प्रतिशत पर्यटकों में राजस्थान के धार्मिक पर्यटन स्थलों से परिचित होने की विशेष ललक होती है। गत वर्ष भी इसी कारण पुष्कर, उदयपुर, देशनोक, नाथद्वारा, माउंट आबू, रणकपुर, अजमेर आदि स्थानों पर पर्यटकों की काफी आवाजाही दर्ज की गई।

राजस्थान धार्मिक पर्यटन विकास का अखूत खजाना है। यहां के धार्मिक पर्यटन स्थल मरुदेशीय विशिष्टता वाले हैं। इन स्थलों पर पर्यटन करने वाले सैलानियों के भावों से यह सहजता से पता लगता है कि वे न केवल यहां अपनी उपस्थिति ही दर्ज करवाते हैं अपितु धार्मिक अनुष्ठानों में विस्मय और उत्सुकताभाव से सहभागी भी बनते हैं। धार्मिक पर्यटन स्थलों की धर्ममयी छटा पर्यटकों को ऐसी अंतरंग संतुष्टि प्रदान करती है कि वे यहां के धर्म तत्वों को सदा के लिए आत्मसात करने हेतु लालायित होते हैं। सही मायने में ये धर्मस्थल अत्यंत प्रभावोत्पादक और सात्विक महत्व के होते हैं। **पर्यटन के विभिन्न स्वरूपों और धार्मिक पर्यटन स्वरूप की प्रकृति की तुलना की जाए तो ज्ञात होता है कि पर्यटन के अन्य स्वरूपों में तो समस्याएं पैदा होने की अधिक संभावना होती है परंतु धार्मिक पर्यटन स्वरूप समस्याओं के समाधानकारी साबित हो रहे हैं। इनमें विकासात्मक सामर्थ्य होने के साथ मानवीय, सांस्कृतिक और सामाजिक तत्वों के अनुरक्षण की असीम क्षमता है।**

मठ, देवालय, अखाड़े, भजन, कीर्तन, यज्ञ, धार्मिक अनुष्ठान, संस्कार निर्माण केंद्र, योग साधना केंद्र, धार्मिक कार्यों में उपयोगी सामग्री की दुकानें, आध्यात्मिक विषयों के शोध संस्थान, नीतिगत मूल्यों को प्रदर्शित करती चित्रावलियां, यात्री सहायता केंद्र आदि से इन स्थलों का वातावरण इतना धर्ममयी हो जाता है कि हर सैलानी अपने आप में वचनबद्ध शुद्धिकरण को आत्मसात् करने का प्रवृत्त होने लगता है। इन स्थलों पर श्रृद्धालु पर्यटकों के रूप में,

देवस्थान पर्यटन स्थलों के रूप में तथा साधु–संत और पुजारी आदि पर्यटन संवाहक के रूप में होते हैं। ये सभी धार्मिक पर्यटन रूपी विचार के मूल हैं और इन्हीं के माध्यम से धार्मिक पर्यटन की वास्तविक निष्पति होती है।

राजस्थान में ऐसे स्थल, जहां धार्मिक पर्यटन संपदा विद्यमान है तथा उन्हें और अधिक विकसित करने की अपार संभावनाएं छिपी हैं, को तालिका–1 में सूचीबद्ध किया गया है और धर्ममयी पर्यटन परिवेश के निर्माण की आधारशिला रखी जा सकती है।

ये सभी धार्मिक पर्यटन स्थल प्राकृतिक छटा, मरुप्रदेशीय जलवायु और अनूठे शिल्प स्थापत्य के लिए प्रसिद्ध हैं। इन धार्मिक पर्यटन केंद्रों के अतिरिक्त अनेक ऐसे स्थल भी हैं जहां आयोजित धार्मिक मेले अपने आप में आदिवासी जीवनशैली और मरुप्रदेशी पर्यटन का प्रतिनिधित्व करते हैं। जैन विश्व भारती लाडनू (नागौर) और ईश्वरीय विश्वविद्यालय, माउंट आबू अपनेआप में अध्यात्म व योग साधना केंद्र हैं जो धर्म, योग, अध्यात्म और दर्शन में शोध करने वालों के लिए असीम महत्व के हैं। इन सभी से ज्ञात होता है कि राजस्थान धार्मिक पर्यटन का अक्षुण खजाना है।

स्पष्ट है कि **धार्मिक पर्यटन स्थलों के दोहरे लाभ होते हैं। एक ओर ये सैलानियों की धर्म व अध्यात्म विषयक जिज्ञासाओं को संतुष्ट करते हैं दूसरी ओर, इन पर्यटन स्थलों की स्थानीय अर्थव्यवस्था को विशेष गति देते हैं। सैलानियों की आवाजाही से अनेक नागरिकों को रोजगार के अवसर मिलते हैं।** परिवहन अभिकर्ता, गाइड, दुकानदार, पुजारी, आवास व्यवस्थापक, रेस्तरां मालिक, फोटोग्राफर, धार्मिक कैसेट्स व पुस्तक विक्रेता, योगसाधक, ज्योतिषाचार्य आदि को प्रत्यक्ष रोजगार मिलता है। साथ में अप्रत्यक्ष रूप से लाभान्वित होने वालों की संख्या भी असीमित है। इनमें होटल कर्मचारी, धोबी, ब्यूटीपार्लर मालिक, पॉलिश करने वाले, पानी पिलाने वाले, भजन गायक आदि शामिल हैं। धार्मिक पर्यटन को सुनियोजित गति देकर प्रदेश में विकास का वातावरण उत्पन्न किया जा सकता है। इस हेतु निम्न सुझावों पर किया गया प्रयोगात्मक प्रयास श्रेयस्कर परिणाम दे सकता है:–

- राज्य का पर्यटन विभाग राज्य में धार्मिक पर्यटन के विकास को विशेष प्रोत्साहन देने के लिए विभागीय प्रशासन व्यवस्था को चुस्त–दुरुस्त करे। इसके लिए सालाना बजट में व्यापक संसाधनों के प्रावधान की जरूरत है।
- धार्मिक स्थलों पर साफ–सुथरा व स्वास्थ्यप्रद माहौल होना धार्मिक पर्यटन विकास की प्रथम कसौटी है। इसके लिए संबंधित विभागों की सक्रियता अनिवार्य होनी चाहिए। मंदिरों, सरोवरों, मेलास्थलों और सार्वजनिक स्थलों पर सुरक्षा के पूरे इंतजाम होने चाहिए।
- लूट–खसोट करने वाले, लपके, भिखारी, एवं अन्य अपराधियों से पर्यटकों को सदैव खतरा बना रहता है। इसके लिए पर्यटक सहायता पुलिस, उड़नदस्ता पुलिस के विशेष एवं नियमित इंतजाम होने चाहिए ताकि पर्यटक सुरक्षित माहौल में विचरण कर सकें।
- परिवहन, आवास, सूचना, चिकित्सा, आदि का प्रभावी इंतजाम करके पर्यटकों को सुविधाजनक पर्यटन उपलब्ध करवाया जा सकता है। विशेष परिवहन व्यवस्था द्वारा और धर्मशाला तथा पेइंगगेस्ट आवास पर्यटकों के लिए विशेष सहयोगी हो सकते हैं।
- पर्यटक गाइड ही पर्यटकों के लिए अनिवार्य व विशेष यात्रा सहयोगी होते हैं। विशेष प्रशिक्षण एवं सूचनाओं द्वारा इनकी क्षमताओं में अभिवृद्धि की जा सकती है। इसके लिए राज्य के पर्यटन विभाग को पुख्ता इंतजाम करने के दायित्व की अविलंब निष्पत्ति की आवश्यकता है।
- पुजारी, योगाचार्य, ज्योतिषाचार्य आदि धार्मिक पर्यटन तत्वों के मूल संवाहक हैं। इनके अनुष्ठान ही पर्यटकों की जिज्ञासाएं होती हैं। विशेष और नियमित प्रशिक्षण द्वारा इन्हें अधिक सक्षम बनाया जा सकता है।
- धार्मिक पर्यटन विकास के लिए साहित्य प्रकाशन व प्रचार–प्रचार अति आवश्यक है। राज्य प्रशासन द्वारा अत्याधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी (आकाशवाणी एवं दूरदर्शन) (कैसेट, सी.डी., वेबसाइट) द्वारा इन्हें अधिक सशक्त बनाया जा सकता है।
- राज्य प्रशासन को चाहिए कि राज्य में विद्यमान अपरिचित एवं लुप्त हुए धार्मिक पर्यटन स्थलों की सूची बनाई जाए ताकि उन्हें नियोजित विकास के द्वारा पर्यटन संपदा में शामिल किया जा सके।
- राज्य के विद्युत, जल, स्वास्थ्य, सूचना, परिवहन, सुरक्षा और देवस्थान आदि विभागों के तालमेल से ही सशक्त धार्मिक पर्यटन का निर्माण संभव है। सभी विभागों से राजकीय विकासार्थ ऐसी भावना अपेक्षित है।
- धार्मिक पर्यटन विकास के नए आयामों की खोज के लिए राज्य तथा अंतर्राज्यीय स्तर पर प्रबुद्ध वर्गों के विचार मंच की स्थापना की जाए।

राज्य की गौरवमयी धार्मिक पर्यटन संपदा आर्थिक व सात्विक विकास का प्रतीक है। अफसोस केवल इस बात का है कि स्वतंत्रता से आज तक इस दिशा में किए गए प्रयास मात्र धर्मस्थलों के जीर्णोद्धार तक ही सीमित हैं। धार्मिक पर्यटन विराटता के नजरिए से राज्य में पर्यटन के इस नए पहलू को सशक्त बनाए जाने की प्रबल आवश्यकता है। **राज्य सरकार राज्य पर्यटन विकास को गौण न समझे और स्वयं चुनावी व्यूहरचनाओं तक सीमित न रहकर राज्य को विकास का बुनियादी रास्ता दिखलाए और धार्मिक स्थलों को दलगत राजनीति (जैसाकि कुंभ मेले में प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है) से दूर रखा जाए। राज्य का पर्यटन वैभव इतना अथाह है कि राज्य को आर्थिक दृष्टिकोण से आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है।**

राज्य विकासार्थ मानसिकता का सकारात्मक होना अनिवार्य है। केवल तभी "पधारो म्हारे देश" और "नैणा नेह धणैर" नामक आत्मीयता उद्धेलित करते हुए उद्घोष साकार हो सकेंगे। साथ ही हमारी पारिवारिक यात्रा की सात्विक एवं प्राचीन परंपरा को पुनः गति मिल सकेगी। धार्मिक पर्यटन विकासार्थ विचार व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र निर्माण के प्रतीक हैं। आइए, हम इन्हें यथार्थ में बदलने का प्रण लें। ❑

व्याख्याता, व्यावसायिक प्रशासन,
जैन कन्या महाविद्यालय,
बीकानेर, राजस्थान

गुरु पूर्णिमा का सरोकार

कृष्ण कल्कि

सूचना के आज के युग में जबकि सारी दुनिया अदद गांव सरीखी सिमटती जा रही है, ज्ञान का महत्व किसी से छिपा नहीं है। ज्ञान सिर्फ आज की जीवनचर्चा के लिए ही जरूरी नहीं है, बल्कि जब से मनुष्यमात्र इस धरती पर अस्तित्व में है तब से ज्ञान ही सभ्यता (चाहे वह ग्रामीण हो या नगरीय) का मूल रहा है। सभ्यता और विकास की यात्रा की धुरी मूलतः ज्ञान ही है।

इसी ज्ञान के प्रति श्रृद्धासुमन समर्पित करने की पारंपरिक भारतीय बेला है – गुरु पूणिमा, जो इस वर्ष दो जुलाई को पड़ रही है। आधुनिक भारत में जो स्थान फिलहाल 'शिक्षक दिवस' (5 सितंबर) को हासिल है, वही महत्व प्राचीन भारत में 'गुरु पूर्णिमा' को प्राप्त रहा है। लेकिन पर्वों की भारतीय अवधारणा से 'गुरु पूर्णिमा' कई मायनों में सर्वथा भिन्न भी है। ठीक–ठीक अर्थों में कहें तो यह कोई पर्व नहीं, बल्कि आभार प्रदर्शित करने का दिन है।

ज्ञान चूंकि मनुष्य मात्र की चेतना को संपन्न बनाता है, इसीलिए ज्ञान का संबंध चेतना से है। मनुष्य मात्र में संभव हुई इसी चेतना की पूर्णतम पराकाष्ठा की आभा के प्रति आभार व्यक्त करने का दिन है गुरु पूणिमा। भारतीय परंपरा में ज्ञान को चेतना का समग्र स्वरूप माना गया है। इसीलिए चेतना के प्रथम और संभवतम खिलाव की दिव्य ऋचाओं को समग्रीभूत रूप से 'वेद' कहा गया, जिसका अर्थ ही ज्ञान होता है और न सिर्फ आध्यात्मिक साधना, चिंतन, कर्मकांड आदि तक ही बल्कि मनुष्य मात्र की चेतना को संपन्न करने वाली तमाम प्रविधियों की एकीकृत संज्ञा के रूप में माना गया है।

ज्ञान के प्रकार

भारत में ज्ञान के मुख्यतः दो प्रकार निर्धारित किए गए हैं – 1. अपरा, तथा 2. परा। 'अपरा' का तात्पर्य ज्ञान के बाह्य स्वरूप से है जो सांसारिक कर्मों से संबंधित है, जबकि 'परा' का तात्पर्य ज्ञान के आंतरिक स्वरूप से है जो अंतर्ज्ञान को फलित करता है। अपरा और परा – दोनों को मिलाकर ही ज्ञान के समग्र स्वरूप का निर्धारण किया गया है। किसी एक के बिना दूसरा स्वयं अधूरा है।

यही वजह है कि प्राचीन शिक्षा के अंतर्गत ब्राह्मण परंपरा में मूल रूप से जिन 64 कलाओं तथा उनके कुल अंतर्भेदों को मिलाकर जिन 518 कलाओं के अलावा बौद्ध परंपरा में परिगणित 91 कलाओं और जैन परंपरा में वर्णित 72 कलाओं का उल्लेख मिलता है उनमें सूपकर्म (रसोई पकाना), भूरुहदोहद (बागवानी), कृषि, पशुपालन, पटबंध (वस्त्र बुनाई), संसेचन (सिंचाई), जल–संहरण (जल निकासी), वाणिज्य जैसी निहायत सांसारिक समझी जाने वाली जानकारियां भी शामिल हैं।

ज्ञान का स्रोत

सांसारिक हो या आत्मिक – ज्ञान के दोनों ही स्तरों का प्रवाह किसी न किसी स्रोत से होता है आखिर कोई तो होगा जो ज्ञान प्रदान करेगा, क्योंकि न केवल मनुष्य बल्कि कोई भी चेतन प्राणी जन्मजात ज्ञान–संपन्न नहीं होता। ज्ञान उसे उस विभूति से अर्जित करना पड़ता है जो ज्ञान प्रदान करता है। ज्ञान प्रदान करने वाली इसी विभूति को भारत में प्राचीनकाल से 'गुरु' कहा जाता है।

स्वयं 'गुरु' शब्द अपने आप में विलक्षण और व्यापक अर्थ का बोधक है। 'गुरुगीता' में कहा गया है कि 'गु' का अर्थ है अंधकार और 'रु' का अर्थ है विनाश करने वाला अतः जो किसी भी तरह के अंधकार (अज्ञान) को नष्ट करता है, वह गुरु है। शब्द विशेष का सटीक अर्थ ज्ञात करने के प्राचीन शास्त्र 'निरुक्त' की विधि से भी 'गुरु' शब्द का अर्थ कुछ ऐसा ही निकलता है – गुरु वह है 'जो अज्ञान को निगल जाता है' अथवा 'जो वेदादि शास्त्रों (अर्थात अपरा विद्या) और आत्मतत्व (अर्थात परा विद्या) का ज्ञान कराता है अथवा 'जो शिष्य को सही रास्ते पर प्रवृत्त और परिचालित करता है।' इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में गुरु को किसी एक क्षेत्र विशेष या समय विशेष या जाति विशेष या ज्ञान शाखा विशेष तक ही सीमित नहीं माना गया है बल्कि हर वह व्यक्ति जो किसी दूसरे को किसी भी तरह का ज्ञान प्रदान करता है दरअसल इस नाते वह गुरु है।

यही वजह है कि प्राचीनकाल में ऐसे भी अनेक व्यक्ति हुए हैं जिनके गुरु एक से अधिक रहे हैं अर्थात उन्होंने ज्ञान की किसी एक शाखा की जानकारी किसी एक से ली, तो किसी अन्य बोध को किसी दूसरे से प्राप्त किया। प्राचीनकाल में यह भी जरूरी नहीं समझा जाता था कि ज्ञान का स्रोत कोई मनुष्य ही होना चाहिए, बल्कि जहां से भी जो भी महत्वपूर्ण बोध प्राप्त होता है उसे वहीं से निःसंकोच प्राप्त कर लेने का चलन रहा है। विष्णु के अवतार माने जाने वाले दत्तात्रेय के तो एक–दो नहीं बल्कि 24 गुरु थे जिनमें कबूतर, अजगर, मधुमक्खी, हाथी, मछली तक के नाम शामिल हैं क्योंकि उन सभी से उन्होंने कोई न कोई शिक्षा ग्रहण की और उन सभी के प्रति उन्होंने जीवनभर सम्मान भी व्यक्त किया।

पूर्णता की प्रतीक पूर्णिमा

जिससे भी कोई शिक्षा मिले, वही गुरु है और ऐसे हर गुरु के प्रति सम्मान व्यक्त करने का दिन है गुरु पूर्णिमा। यहां यह प्रश्न स्वाभाविक है कि इस दिन को पूर्णिमा के दिन ही क्यों मनाया जाता है? तर्क संभव है कि **गुरु तो वर्षभर शिक्षा प्रदान करते हैं और जहां तक उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित करने का सवाल है तो वह भी वर्ष में किसी भी दिन किया जा सकता है। दरअसल पूर्णिमा के दिन को गुरु के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए निर्धारित करना एक प्रतीक है जो गुरु की पूर्णता को प्रकट करता है। पूर्णता की प्रतीक है पूर्णिमा, क्योंकि उसी दिन चंद्रमा अपनी पूर्णता को प्राप्त करता है।**

गुरु का स्तर

गुरु हालांकि हर स्तर के शिक्षक के लिए सामान्य संज्ञा है, किंतु अत्यंत प्राचीनकाल में उसके तीन स्तर बताए गए हैं – 1. आचार्य, 2. उपाध्याय, तथा 3. गुरु। इनमें से तीसरे से दूसरा और दूसरे से पहला श्रेष्ठ माना जाता रहा है। आचार्य उसे कहते हैं 'जो शिष्य को उसका अपनयन संस्कार हो जाने के बाद शिक्षादि अंगों के सारे रहस्यों की व्याख्या के साथ समग्र वेद अर्थात ज्ञान की विद्या प्रदान करता है। आचार्य की यह परिभाषा

'अपरा' की दृष्टि से है, जबकि 'परा' की दृष्टि से आचार्य वह होता है' जो नई और सार्थक प्रविधियों यानी आचारों में शिष्य को पारंगत करने के लिए उसकी पुरानी प्रविधियों यानी संस्कारों का नाश करता है।'

दूसरे स्तर का शिक्षक यानी उपाध्याय उसे कहते हैं जो अपनी आजीविका के लिए शिष्य को वेद अर्थात ज्ञान के किसी एक अथवा सभी अंगों की शिक्षा देता है। इस अर्थ में आज के सभी स्कूली शिक्षक और पेशेवर मार्गदर्शक जो शुल्क लेकर शिक्षा प्रदान करते हैं, उपाध्याय की श्रेणी में आते हैं।

तीसरे स्तर का शिक्षक यानी गुरु वह होता है' जो अपने यजमान के यहां विभिन्न (जन्मपूर्व से लेकर मृत्युपश्चात तक जिनकी संख्या कुल 16 बताई गई है) को संपन्न कराता है और अपने गुरुकुल में शिष्यों के लिए अन्न अर्थात भोजन का प्रबंध सुनिश्चित करता है।'

वैसे, शिक्षक के तीनों प्राचीन स्तर दरअसल उनके अवांतर भेद हैं। मूलतः तो 'गुरु' की लोक प्रचलित संज्ञा में तीनों ही स्तर समाहित हैं और 'गुरु पूर्णिमा' का लक्ष्य भी 'गुरु' ही है, न कि उनके अवांतर भेद – क्योंकि 'अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः' अर्थात अध्यापन (चाहे वह किसी भी स्तर या कोटि का हो) स्वयं ब्रह्मयज्ञ है। ऐसे ही गुरु को साक्षात परब्रह्म माना गया है, जिस संबंध में निम्न सूक्ति सदियों से बहुप्रचलित है–

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।
(गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं, गुरु ही महेश्वर हैं। गुरु साक्षात परब्रह्मा हैं – ऐसे गुरु को प्रणाम)

गुरु होने की शर्तें

'गुरु पूर्णिमा' के दिन विभिन्न उपचारों सहित सम्मान पाने के पात्र जिस गुरु को परब्रह्म की उपाधि दी गई है, वैसा गुरु होना भी आसान नहीं है। 'रुद्रयामल तंत्र' में कहा गया है कि गुरु शांत, इंद्रियों को वश में करने वाला, कुलीन, शुद्ध वेश धारण करने वाला, पवित्र आचार व्यवहार वाला, सुप्रतिष्ठित, पारंगत, सुबुद्धि और अच्छे विचार वाला, आश्रमी अर्थात कुलपालक, ध्याननिष्ठ, गूढ़ अर्थों का ज्ञान कराने में समर्थ, अनुग्रह करने वाले, कृपालु, रोगहीन, अहंकार से रहित, महापंडित, विकारों से रहित, नशे से मुक्त, वाणी पर असाधारण अहितकारी कर्मों को त्यागने वाला, सुंदर लक्षणों से युक्त, विशिष्ट व्यक्तियों से सम्मानित, ज्ञानी, मौन साधक, वैराग्यसंपन्न, तपस्वी, सत्यवादी, भावुक, कल्याणकारी, दानी, संपत्तिशाली, धैर्यवान तथा प्रभुतासंपन्न होना चाहिए।

मुंडकोपनिषद, सम्मोहन तंत्र, कुलार्णव तंत्र, तंत्रसारसंग्रह, कौलावली निर्णय, तंत्रराज तंत्र, कुल चूड़ामणि, गणेशविमर्शिनी, संहितोपनिषद, तैत्तिरीयोपनिषद जैसे अनेक प्राचीन ग्रंथों में गुरु के और भी तमाम लक्षण बताए गए हैं।

शर्तों का परिणाम

प्राचीनकाल में गुरु के लिए इतनी जटिल शर्तें इसीलिए बनाई गई थीं ताकि अल्पयज्ञ और ओछे लोग गुरु के गरिमापूर्ण पद पर प्रतिष्ठित न हो सकें तथा गांव–गांव तक से आने वाले उनके शिष्यों को आला दर्जे की शिक्षा से लेकर सर्वोत्तम कोटि के आचार– व्यवहार की सीख मिल सके। यही वजह है कि प्राचीनकाल में भारत का ज्ञान–विज्ञान इतनी उच्चकोटि का हुआ करता था कि शेष विश्व की तमाम सभ्यताएं उसे देखकर आज भी दांतों तले उंगली दबाती हैं। ऐसे महिमापूर्ण गुरुओं से सीखे हुए आचार–व्यवहार के कारण ही भारत के गांव–गांव तक में मानवीय संस्कारों की जड़ें इतनी गहरी जम सकीं कि आज एक ओर जहां बाकी दुनिया में भारत के आम ग्रामीणजनों की सभ्यता व संस्कारों को आदर्श माना जा रहा है, वहीं दूसरी ओर आधुनिकता की तमाम व्यक्तिकेंद्रित और बदचाल आंधियां भी अभी तक उनके पांव नहीं उखाड़ पाई हैं।

यह सही है कि प्राचीन भारत के गुरुओं ने आधुनिक अर्थों वाले योजनाबद्ध ग्रामीण विकास पर केंद्रीय रूप से बल नहीं दिया था किंतु कृषि, पशुपालन, सिंचाई, बागवानी, ग्रामशिल्प सहित तमाम ग्रामीण सरोकारों के परिप्रेक्ष्य में उनके द्वारा दी गई व्यावहारिक शिक्षाओं के कारण ही यह संभव हुआ है कि मौसम विज्ञान की आधुनिक तकनीक के न होने के बावजूद घाघ जैसे कृषक कवि इन्हीं गांवों में जन्म ले सके जिनकी मौसम संबंधी भविष्यवाणियां आज के साधन संपन्न वैज्ञानिकों तक को अक्सर पीछे छोड़ देती हैं और उपयुक्त साधनों के नितांत अभाव के बावजूद भारत का पारंपरिक कृषिकर्म आज भी इतनी समझदारी से युक्त है कि आधुनिक कृषि विज्ञान को भी उससे दिशाएं मिलती हैं। प्राचीन भारतीय गुरुओं की शिक्षाओं का ही यह परिणाम है कि भारत की पारंपरिक ग्रामीण अर्थव्यवस्था और जोहड़ों, बंधों आदि के जरिए जलसंग्रहण की पारंपरिक ग्रामीण तकनीक आज की जटिल ग्रामीण समस्याओं की एकमात्र सहज विकल्प समझी जा रही है। वस्त्र बुनाई की कला का आविष्कार करके उन दूरंदेशी गुरुओं ने जहां एक ओर शिष्यों की पीढ़ियों को सभ्यता के संस्कारी रास्ते पर अग्रसर किया, वहीं दूसरी ओर गांव–गांव तक के अनगिनत घरों को आत्मनिर्भर बनाते हुए हमेशा के लिए एक सबल ग्रामीण अर्थव्यवस्था का सूत्रपात किया जिसे आगे चलकर उन गुरुओं ने कुटीर उद्योगों संबंधी व्यावहारिक शिक्षाओं के जरिए बल भी प्रदान किया। मुख्य लक्ष्य न होने के बावजूद जिन गुरुओं ने स्वयं अनचीन्हें और अज्ञात रहकर भी ग्रामीण विकास को गति देने वाले प्रकल्पों को जिस तरह बल प्रदान किया, उसके लिए परंपरा द्वारा उनके सम्मान में एक दिन निश्चित करना न तो अप्रासंगिक है और न अस्वाभाविक।

यह अनायास नहीं है कि गुरु पूर्णिमा के दिन को जैसे पारंपरिक उत्साह के साथ आज भी भारत के गांवों में मनाया जाता है, वैसे उत्साह से शहरों में नहीं। यह अलग बात है कि सभ्यता के चलते चक्र और पीढ़ियों के बदलते जाने के कारण गुरुओं के चेहरे भी बदल गए हैं। गांवों में भी अब शायद कोई भूलकर भी प्राचीन भारत के ज्ञात–अज्ञात गुरुओं को श्रद्धासुमन नहीं चढ़ाता और समग्र ग्रामीण विकास के लिए दी गई उनकी शिक्षाओं को भी याद नहीं करता, किंतु मौजूदा पीढ़ी के गुरुओं और शिक्षकों के प्रति व्यक्त सम्मान भी प्रकारांतर से गुरु परंपरा के प्रति ही सम्मान है। क्योंकि यदि ज्ञान पुराना नहीं होता, तो गुरु भी नया–पुराना कैसे हो सकता है! गुरु परंपरा तो ज्ञान की अबाधधारा की तरह अविच्छिन्न ही चली आ रही है।

कालक्रम और दृष्टांत

कालक्रम ने इतना जरूर किया कि परंपरागत रूप से गुरु होने के लिए जो जटिल शर्तें चली आ रही थीं, उनमें किंचित कतर–ब्यौंत की हालांकि गुरु के जरिए शिष्यों के समक्ष दृष्टांत पेश करने के मूल स्वर को फिर भी बरकरार रखा गया। गुरु के लक्षणों में कालक्रम में हुई कटौती को कबीर के इस दोहे से समझा जा सकता है जिसमें उन्होंने बैरभाव न पालने, अहंकार रहित होने, ईश्वर भक्ति, स्नेह, सांसारिक विषयवासनाओं से विलग रहने जैसे गुणों को गुरु के लिए जरूरी बताया है–

निरबैरी निहकामता, सांई सेती नेह।
विषयन सूं न्यारा रहे, गुरवन का अंग ऐह।।

कबीर द्वारा वर्णित ये शर्तें गुरु के लिए निर्धारित प्राचीन शर्तों की अपेक्षा हालांकि काफी कम हैं, किंतु आज के युग के हिसाब से ये भी बहुत हैं।

यहां प्रश्न स्वाभाविक है कि भारत में गुरु होने के लिए इतनी जटिल शर्तें क्यों लगाई गई हैं? इसका कारण यह कि **भारत में 'गुरु को उपाय माना गया है' जो अपने द्वारा दी गई शिक्षा के माध्यम से समाज के सर्वांगीण विकास को संभव करता है। सर्वांगीण विकास ही भारतीय शिक्षा का चरम लक्ष्य है जो पुस्तकों या प्रवचनों से नहीं, बल्कि आत्मनिरीक्षण से प्राप्त होता है।**

शिक्षा के प्रकार

सर्वांगीण विकसित समाज रचने की दिशा में गुरु अपने जीवन को दृष्टांत के रूप में प्रस्तुत करके अपने शिष्यों को जिन–जिन तरीकों से शिक्षा प्रदान करता है, उसके छह प्रकार बताए गए हैं– 1. प्रेरित करके, 2. सूचित करके, 3 बोल या बताकर, 4. दिखाकर, 5. पढ़ाकर, तथा 6. बोध कराके। गुरु प्रदत्त शिक्षा की इसी प्राचीन प्रविधि को ध्यान में रखकर 'कुलार्णव तंत्र' ने गुरु के कुल 6 भेदों का उल्लेख किया है– प्रेरक, सूचक, वाचक, दर्शक, शिक्षक, और बोधक। इनमें से न कोई किसी से श्रेष्ठ है और न कोई किसी से हीन। यह गुरु पर निर्भर करता है (जो बहुधा शिष्य की बौद्धिक क्षमता के हिसाब से निर्धारित होता है) कि वह शिष्य विशेष को शिक्षा देने के लिए कब कौन–सा रूप अपनाता है अथवा शिक्षा के 6 प्रकारों में से किसी एक या सभी का कब कैसे उपयोग करता है।

शिक्षा के इन विविध प्रकारों और एक से अधिक गुरुओं से भी शिक्षा ग्रहण कर सकने की गुंजाइश वाली भारतीय परंपरा की रोशनी में यह बखूबी समझा जा सकता है कि कोई भी व्यक्ति या वस्तु जो किसी को चाहे जिस भी रूप से शिक्षा प्रदान करती है, दरअसल गुरु कहलाने की हकदार है। अब यह गुरु पर निर्भर है कि वह गुरु के लिए निर्धारित शर्तों को अपने में पूरा होता देखता है या नहीं– और इस नाते स्वयं को गुरु मानता है या नहीं। लेकिन यह गुरु का नजरिया है। शिष्य की दृष्टि इससे अलग होगी– उसे तो जिस किसी से भी कोई शिक्षा मिलेगी, वही उसका गुरु होगा। **भारतीय परंपरा चूंकि व्यक्ति को कृतज्ञ होना सिखाती है, इसलिए हर शिष्य का यह कर्तव्य है कि वह अपने गुरु का आभारी हो और उसका सविधि सम्मान करे। गुरु पूर्णिमा का दिन शिष्य को इसी का अवसर उपलब्ध कराता है।**

अवसर का निहितार्थ

अवसर के लिहाज से 'गुरु पूर्णिमा' के निहितार्थ बहुत गहरे हैं जिनके कई आयाम हैं। एक तो यही, जैसा पहले भी कहा गया है, कि गुरु पूर्णिमा को पूर्णिमा की तिथि को ही मनाया जाना दरअसल एक प्रतीक है जो गुरु के रूप में परिकल्पित ज्ञानात्मक परिपूर्णता की ओर संकेत करता है। ज्ञान की चरम परिपूर्णता सिर्फ भगवान के लिए ही संभव है, इसलिए भगवान को 'गुरुतम गुरु' कहा गया है यानी सबसे बड़ा गुरु... गुरुओं का भी गुरु।

गुरु पूर्णिमा को सूर्य की बेला में ही मनाया जाता है। इसमें दो निहितार्थ छिपे हैं। एक तो यह कि चांद कभी घटता, तो कभी बढ़ता रहता है – ऐसे में गुरु पूर्णिमा को रात में मनाने का मतलब होना ज्ञानराशि को घटता–बढ़ता मानना, जोकि यथार्थ के विपरीत है। जबकि सूर्य हमेशा एक समान रहता है, इसलिए ज्ञानराशि की उपमा उससे दी जा सकती है। फिर, सूर्य भी ज्ञान की तरह ही स्वयं प्रकाशित है जबकि चांद की चमक उधार की है। इसके अलावा गुरु पूर्णिमा को दिन में ही मनाए जाने की परंपरा का दूसरा निहितार्थ यह है कि भारतीय परंपरा में सूर्य को स्वयं भगवान माना गया है। धरती पर जीवन का कारण होने के नाते सूर्य है भी साक्षात भगवद्स्वरूप। भगवान होने के कारण सूर्य गुरुतम गुरु हैं और इस नाते गुरु पूर्णिमा के दिन पूजा पाने के हकदार भी। गांवों में आज भी बहुत से लोग इस दिन अपने गुरु के अलावा सूर्य की भी अर्चना करते हैं।

गुरु पूर्णिमा से जुड़ा एक और निहितार्थ इस बाबत प्रकाश डालता है कि इसे आषाढ़ की पूर्णिमा को ही क्यों मनाया जाता है। भारतीय जलवायु के हिसाब से आषाढ़ को वर्षा का महीना माना जाता है। तिस पर से पूर्णिमा की तिथि कुछ उस दौर में पड़ती है जब मानसून अपने चरम पर होता है – आकाश में घनघोर बादल छाए रहते हैं जिनके बीच सूर्य यदा–कदा ही दमकता दिखता है। बादल अज्ञान के घने अंधियारे का प्रतीक है और सूर्य वस्तुतः ज्ञान का। जिस तरह आषाढ़ पूर्णिमा के दिन घने बादलों के हटने पर ही सूर्य दिख पड़ता है, उसी तरह अज्ञान के मिटने पर ही ज्ञान का उदय होता है। गुरु चूंकि कुल मिलाकर ज्ञान के इसी उदय को संभव करता है, इसलिए उसके प्रति आभार ज्ञापन का दिन आषाढ़ पूर्णिमा ही सुनिश्चित किया गया है।

अधिकारी पात्र

गुरु पूर्णिमा के मौके पर हर वह व्यक्ति अपने हर उस गुरु के प्रति आभार प्रदर्शित करने के लिए उसकी पूजा करने का अधिकारी माना गया है जिससे उसने किसी भी रूप में कोई भी शिक्षा पाई हो। शिक्षा चाहे कितनी भी छोटी हो अथवा उसका संबंध चाहे कितनी भी रोजमर्रा की बात से हो, उसके प्रति आभारी होना हर शिक्षा पाने वाले का कर्तव्य है। गुरु पूर्णिमा का दिन व्यक्ति को उसके इसी कर्तव्य के अनुपालन की याद दिलाता है।

इसीलिए भारतीय परंपरा में गुरु पूर्णिमा को धर्म, संप्रदाय, जाति, लिंग, वर्ग सहित तमाम विभेदों से परे माना गया है। आभार ज्ञापन की बेला में विभेदों का भला काम भी क्या?

विधि–विधान

आभार ज्ञापन वैसे तो जुबानी तौर पर भी किया जा सकता है, लेकिन यह विधि गुरु पूर्णिमा के मौके के लिए स्वीकार्य नहीं। गुरु से मिली छोटी से छोटी शिक्षा के लिए भी इस मौके पर उसके प्रति जिस तरह आभार व्यक्त करने का विधान सुनिश्चित किया गया है उसमें सम्मान, अर्चना और आत्मीयता का भाव भी शामिल होना जरूरी है। भारतीय परंपरा ने इसके लिए 'पूजा' शब्द का प्रयोग किया है – यानी गुरु पूर्णिमा के मौके पर गुरु की विधिवत पूजा करने का विधान है। इसीलिए देश के विभिन्न अंचलों में 'गुरु पूर्णिमा' को 'गुरु पूजा' भी कहते हैं।

विधिवत पूजा विभिन्न उपचारों यानी साधनों से की जाती है जिनकी संख्या पूजा करने वाले की क्षमता और सुविधा के हिसाब से 5 से लेकर 64 तक निर्धारित की गई है।

सभी उपचारों को निर्धारित उपरोक्त क्रम से ही संपन्न किया जाना आवश्यक है और हर उपचार में उल्लिखित वस्तुएं भी पूज्य गुरु को इसी क्रम से समर्पित करने का विधान है। वैसे, विधान यह भी है कि शिष्य की यदि शक्ति न हो या वह सुविधा न जुटा सके तो वह मानसिक रूप से भी गुरु की पूजा कर सकता है। मानसिक पूजा का महत्व उपचारी पूजा से भी कहीं ज्यादा है।

इस तरह स्पष्ट है कि 'गुरु पूर्णिमा' अपने आप में कोई रस्मी त्योहार नहीं, बल्कि चेतना की पराकाष्ठा के प्रति आभार प्रदर्शन का दिन है जिसके अंतर्गत शिष्य हर व्यक्ति या वस्तु के प्रति विधिपूर्वक श्रद्धासुमन समर्पित करता है जिससे उसने अपने जीवन में कभी कुछ भी सीखा हो। यह अलग बात है कि जीवन में कदम–कदम पर कुछ न कुछ सीखते रहने की नियति वाला मनुष्य कहां तक उन सब गुरुओं को याद रख पाता है, किंतु उसे इस हद तक सावचेत व चेतनासंपन्न बनाना ही भारतीय परंपरा का लक्ष्य है और यही 'गुरु पूर्णिमा' का सरोकार भी है। ❑

डी–54, तीसरा तल, मेन बाजार, शकरपुर, दिल्ली–110092

उच्च आय का व्यवसाय ब्रॉयलर पालन

गंगाशरण सैनी

ब्रॉयलर पालन को सफल बनाने में उसकी नस्ल की महत्वपूर्ण भूमिका है। साथ ही ब्रॉयलर को दिए जाने वाले आहार पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। चूजे के स्वास्थ्य का ध्यान रखना भी बेहद जरुरी है। ब्रॉयलर का मांस न केवल स्वादिष्ट और पौष्टिक होता है बल्कि इसका औषधीय उपयोग भी है। ब्रॉयलर पालन एक उच्च आय वाला व्यवसाय है। ग्रामीण युवक अगर इस व्यवसाय को अपनाएं तो न केवल उन्हें अपने गांवों में ही रोजगार उपलब्ध हो सकेगा, उनकी आय में भी वृद्धि होगी।

अगर गांवों में रहकर कृषि पर आधारित उद्योगों को बढ़ावा दें, तो ऐसी उच्चस्तरीय आय प्राप्त की जा सकती है, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। ऐसी ही उच्च आय का बेहतर व्यवसाय है ब्रॉयलर पालन।

ब्रॉयलर नर हो अथवा मादा, ये मांस खाने के उपयोग में ही लाए जाते हैं। इनके मांस की विशेषता यह होती है कि इनका मांस जहां नर्म होता है, वहीं स्वादिष्ट भी होता है। ब्रॉयलर के चूजे जिन नर–मादा पक्षियों के संसर्ग से उत्पन्न होते हैं, वे आमतौर पर दो या तीन नस्लों तथा कभी–कभी और ज्यादा चार विभिन्न शुद्ध भारी नस्ल के पक्षियों के संसर्ग का परिणाम होते हैं। **सात से नौ सप्ताह में 3 से 3.5 किलोग्राम संतुलित आहार खाकर 900–1200 ग्राम तक शरीर भार ग्रहण कर लेने वाले मुर्गे–मुर्गियों को ब्रॉयलर की संज्ञा दी जाती है।**

ब्रॉयलर की प्रमुख विशेषता यह होती है कि वह तीव्रगति से शारीरिक विकास करता है और खाए जाने वाले आहार को उचित मात्रा में सुगमता से मांस में परिवर्तित कर देता है। इसके अतिरिक्त ब्रॉयलर की प्रमुख विशेषता उसकी छाती में मांस की अधिकता होना भी होती है। वास्तव में ब्रॉयलर पालन वर्तमान समय में एक उच्च आय वाला व्यवसाय बन चुका है। इसका प्रमुख कारण है कि ब्रॉयलर को थोड़ी आयु में ही मांस हेतु बाजार में बेचा जा सकता है।

ब्रॉयलर के शारीरिक भार में वृद्धि प्रत्येक सप्ताह वांछित दर से होती है। उन्हें खिलाया गया आहार कैलोरी, प्रोटीन के अनुपात में संतुलित होगा तभी आहार का मांस में परिवर्तन भी उचित होकर अधिकतम लाभ अर्जित करवाने में सक्षम होगा।

शरद ऋतु में प्रतिचक्र मात्र 9 सप्ताह की अल्पावधि में सभी ब्रॉयलर की मांस के लिए बिक्री कर देने के कारण से उनका ब्राऊ खाली हो जाता है। ब्राऊ खाली होने के उपरांत 10 दिन तक उसके बिछावन की गुड़ाई करके चूना डालकर बिछावन को सुखाना पड़ता है। इसके उपरांत बाड़े में ब्रॉयलर का दूसरा चक्र शुरू किया जाता है। इस तरह एक वर्ष में ब्रॉयलर की पांच नस्लें पाली जा सकती हैं जो आगे इसी प्रकार से निरंतर चलती रहती हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि ब्रॉयलरपालक को निरंतर आय प्राप्त होती रहती है।

ब्रॉयलर पालन को सफल बनाने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका उसकी नस्ल की होती है। उचित नस्ल का चयन नितांत आवश्यक है। ब्रॉयलर पालन हेतु व्हाइट फारमीस, रोड आइलैंड रेड, व्हाइट प्लाइमाथ रॉक और आस्ट्रेलिया की आस्ट्रेलियाई नस्ल के मुर्गे–मुर्गियों को उपयोग में लाया जाता है। इन्हीं उन्नत नस्लों के संसर्ग से पेरेंट लाइन के मुर्गे–मुर्गियों के संसर्ग से जो अंडे प्राप्त होते हैं, उनसे ही ब्रॉयलर के चूजे निकाले जाते हैं।

ब्रॉयलर का मांस अत्यंत स्वादिष्ट एवं पौष्टिक होता है। जैसाकि सर्वविदित है कि मानव शरीर की कार्यक्षमता को बनाए रखने हेतु ऊर्जा की आवश्यकता होती है। मानव को यह ऊर्जा कार्बोहाइड्रेट और चर्बी से प्राप्त होती है। ब्रॉयलर के मांस में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा कम होती है। यह मात्रा मुर्गी के मांस की तुलना में लगभग आधी अर्थात् प्रति 100 ग्राम में 151 कैलोरी होती है इसलिए यह मानव शरीर के लिए ऊर्जा का कोई विशेष स्रोत नहीं होता है। इसके विपरीत, ब्रॉयलर का मांस उन लोगों के लिए अति उत्तम रहता है जिनका शरीर भारी होता है अथवा जिन व्यक्तियों को ऊर्जा की कम और प्रोटीन की अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है। मानव शरीर की सभी मांसपेशियों को चुस्त–दुरुस्त बनाए रखने वाले प्रोटीन के समस्त जरूरी अमिनो एसिड तत्व ब्रॉयलर के मांस में विद्यमान होते हैं।

ब्रॉयलर के मांस में 25–33 प्रतिशत प्रोटीन पाया जाता है। इसका मांस अच्छी तरह पच कर मानव को पूर्ण प्रोटीन प्रदान करता है।

सारणी–1

ब्रॉयलर के मांस में विद्यमान विटामिन

विटामिन वर्ग	उपलब्ध मात्रा (प्रतिशत)
विटामिन ए	32.5 आई.यू.
विटामिन बी$_{12}$	12.0 आई.यू.
नायसिन	13.5 मि.ग्राम
थायमिन	0.2 मि.ग्राम
रिबोफ्लेविन	2.5 मि.ग्राम
एस्कोर्विक एसिड	21.5 मि.ग्राम

सारणी–2

तापमान के अनुसार ब्रॉयलर आहार ग्रहण करने की क्षमता

तापमान	आहार ग्रहण करने की क्षमता (मि. ग्राम)
15° सेल्सियस	2.40
18° सेल्सियस	2.35
21° सेल्सियस	2.30
24° सेल्सियस	2.24
27° सेल्सियस	2.20
30° सेल्सियस	2.17

सारणी–3

ब्रॉयलर को दिया जाने वाला सामान्य आहार

खाद्य पदार्थ	मात्रा (प्रतिशत/भाग)
दली हुई मक्का	40
दला हुआ गेहूं/ ज्वार/बाजरा	10
गेहूं का चोकर	5
धान की भूसी	15
मांस का चूरा	7
मछली का चूरा	6

इसके अतिरिक्त ब्रॉयलर का मांस गर्भवती महिलाओं के लिए अत्यंत लाभप्रद रहता है, क्योंकि यह गर्भवती महिला को 15–20 प्रतिशत कैलोरी ऊर्जा प्रदान करता है। इसके साथ ही ब्रॉयलर के मांस में कार्बोहाइड्रेट एवं चर्बी तो विद्यमान रहती ही है। अल्पवयस्कों के शारीरिक विकास के लिए ब्रॉयलर में अंतर्निहित तत्व लिनोलिक विनोलेनिक और एफ डोनिक एसिड भी 28–32 प्रतिशत तक विद्यमान रहते हैं।

ब्रॉयलर के मांस का औषधीय उपयोग भी है। ब्रॉयलर के मांस को भोज्य पदार्थ के रूप में उपयोग में लाने से बच्चों की त्वचा में होने वाली खुश्की, खुरदरापन, व त्वचा के रोगों से बचाव हो जाता है। ब्रॉयलर के मांस से प्राप्त होने वाली विटामिनों का विवरण सारणी–1 में दर्शाया गया है।

अतिरिक्त कैल्शियम, आयोडीन, फॉस्फोरस, लोहा, तांबा आदि धातु पदार्थ भी मानव शरीर को प्राप्त होते हैं।

ब्रॉयलर पालन में इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि ब्रॉयलर के बाड़े का तापमान प्रारंभ में 85 डिग्री फॉरेनहाइट रहना चाहिए और इसे प्रति सप्ताह 5 डिग्री फॉरेनहाइट तक ले आना चाहिए। इस बात का भी विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि ब्रॉयलर के बाड़े में 50–70 प्रतिशत तक नमी तो बनी रहनी चाहिए। इसके साथ ही बाड़े में फैलाए गए बिछावन की नमी भी 25–30 प्रतिशत तक रहनी चाहिए। ब्रॉयलर के बाड़े में प्रदूषित वायु का प्रवेश नहीं होना चाहिए अन्यथा उनके भार में वृद्धिदर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखकर ब्रॉयलर का बाड़ा ऐसे स्थान पर बनाया जाना चाहिए, जो ऊंचा तो हो ही, साथ ही वहां सूर्य का प्रकाश भी पहुंचता हो और वायु के आवागमन की सुनिश्चित व्यवस्था हो।

ब्रॉयलर पालन में आहार का विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान है। अतः ब्रॉयलर को दिए जाने वाले आहार पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। ब्रॉयलर अपने बढ़ते हुए शरीर के लिए ऊर्जा एवं अवयवों की आवश्यकतानुसार अपना आहार तदानुसार मात्रा में ग्रहण कर लेता है। यहां इसका उल्लेख करना नितांत आवश्यक है कि ब्रॉयलर के आहार ग्रहण/खाने की क्षमता वायुमंडलीय तापमान पर भी बहुत अधिक निर्भर रहती है। वायुमंडल के तापमान पर ब्रॉयलर के आहार ग्रहण करने की अनुमानित क्षमता को सारणी–2 में दर्शाया गया है।

सारणी–2 के अवलोकन से स्पष्ट है कि तापमान में वृद्धि के साथ–साथ ब्रॉयलर की आहार ग्रहण करने की क्षमता कम होती चली जाती है जिससे उसके शारीरिक भार में तीव्र गति से कमी होती चली जाती है, इसलिए ब्रॉयलर के बाड़े का तापमान 15 डिग्री सेल्सियस से 24 डिग्री सेल्सियस तक ही उपयुक्त रहता है। इसके अतिरिक्त ब्रॉयलर चूजों को 15 प्रतिशत अधिक तापमान की आवश्यकता होती है।

इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि ब्रॉयलर चूजों के शारीरिक भार में तीव्र गति से वृद्धि हो सके। इसके लिए उन्हें पौष्टिक एवं अधिक ऊर्जा वाला आहार देना चाहिए। ब्रॉयलर को आहार मौसम के अनुसार दिया जाना चाहिए। गर्मी के मौसम में इन्हें आहार के रूप में अधिक मात्रा में अनाज के अतिरिक्त चर्बीयुक्त राशन, सूर्यमुखी की खली, विल की खली आदि देनी चाहिए। ब्रॉयलर को दिए जाने वाले सामान्य आहार को सारणी–3 में दर्शाया गया है।

चूजे के स्वास्थ्य का ध्यान रखना बेहद जरूरी कार्य है। इसमें थोड़ी–सी भी लापरवाही सारे उद्योग, लागत और व्यवसाय को बर्बाद कर सकती है। इसलिए चूजे को एक से तीन दिन की आयु में ही एफ और मैरेक्स रोग का टीका अवश्य लगवा देना चाहिए। जिस समय चूजे की आयु 6 सप्ताह की हो, तो उस समय चूजे को 'फॉडल पॉक्स' का टीका अवश्य लगवा देना चाहिए। ब्रॉयलर चूजों में किसी भी प्रकार का रोग न लग सके, इसके लिए यह आवश्यक होता है कि जिस समय ब्रॉयलर की आयु 10 दिन की हो जाए, तो उस समय ब्रॉयलर चूजों को दिए जाने वाले पेयजल में काड्रीनाल एवं सेस्टासाईक्लिन का उपयोग अवश्य करना चाहिए।

उपर्युक्त वर्णित विधि को अपनाकर यदि ब्रॉयलर पालन किया जाए तो ग्रामीण युवकों को ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार मिलेगा और उनकी आय में वृद्धि होगी। साथ ही उनका शहरों की ओर पलायन भी रुकेगा। ❑

कृषि बागवानी सलाहकार
5ई/9बी, बंगला प्लाट
फरीदाबाद–121001

बढ़िया गुड़ उत्पादन से हो सकती है अच्छी आमदनी

कुमार मयंक

गन्ने के रस से गुड़ बनाने का परंपरागत काम कारीगर करते हैं जो स्थानीय रूप से बहुतायत में मिल जाते हैं। अब इसका प्रशिक्षण भी दिया जाता है। गुड़ बनाने में अधिक लाभ कमाने के लिए जरूरी है कि गन्ना अच्छी किस्म का, स्वस्थ और ताजा हो। कोल्हू अधिक रस निकालने में सक्षम तथा न्यूनतम टूट-फूट वाला हो।

हमारे देश में लघु एवं कुटीर उद्योगों की परंपरा बहुत पुरानी है। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि आधारित छोटे उद्योग आज भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। वर्षपर्यंत चलने वाला स्वरोजगार ग्रामवासियों के लिए कठिन होता है। इसलिए वे मौसमी रोजगार से पूरा लाभ उठाते हैं और उसके बाद अपनी खेती के मुख्य कामधंधों में लग जाते हैं। सहायक उद्योग–धंधों से भी ग्रामीणों का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन स्तर समुन्नत होता है। उन्हें आगे बढ़ने का अवसर प्राप्त होता है, यह भी बहुत जरूरी है।

यद्यपि आधुनिक खानपान व शहरों में नई पीढ़ी चाकलेट को महत्व ज्यादा देती है, लेकिन असली हिदुंस्तान तो आज भी उन गांवों में ही बसता है जहां हमारे देश की तीन चौथाई आबादी रहती है। वहां आज भी किसान अपनी थकान दूर करने के लिए गुड़ खाकर पानी या छाछ पीते हैं। गुड़ को वहां कच्ची मिठाई कहा जाता है। गुड़ दैनिक भोजन से तीज–त्योहारों तक में उपयोग किया जाता है।

गुड़ की मिठास बहुत पुरानी – गन्ने के रस को पकाकर उससे गुड़, खांडसारी व राब आदि बनाने की परंपरा हमारे देश में सदियों पुरानी है। अनेक प्राचीन ग्रंथों में इक्षु जनित शर्करा अर्थात् ईख से बनी शक्कर का उल्लेख मिलता है। तब से अब तक गुड़ और खांड आदि की लोकप्रियता ग्रामीण क्षेत्रों में निरंतर कायम है। यदि उन्नत प्रौद्योगिकी को अपना कर नए ढंग से गुड़ बनाने का काम किया जाए तो अक्तूबर से मई–जून के 8–9 महीनों में ही भरपूर कमाई की जा सकती है। आवश्यकता पूरा ध्यान देने भर की है।

अच्छा गुड़ यानी ज्यादा कीमत – पहले गुड़ गिंदोड़ा, लड्डू, भेली, बाल्टी, खुरपा फाड़ आदि की शक्ल में बनाया जाता था। इसे बनाते वक्त इसमें अनेक प्रकार की अशुद्धियां आ जाती थीं। मिठास के कारण चींटे, बर्र व मधुमक्खियों के अतिरिक्त धूल आदि भी गुड़ में मिल जाती थी।

अब स्वच्छता के प्रति जागरूकता तेजी से बढ़ी है। अतः सफाई पसंद लोग गुड़ जैसी चीज भी साफ–सुथरी अवस्था में लेना पसंद करते हैं। सामान्य गुड़ जहां 10–12 रुपये किलो के भाव में बिकता है वहीं पर बढ़िया पैकिंग और सुंदर क्यूब्स की शक्ल में गुड 50 रुपये किलो तक बिक रहा है।

कच्चा माल मिले भरपूर – हमारे देश में गन्ना एक प्रमुख फसल है अतः कच्चे माल की उपलब्धता भरपूर मात्रा में रहती है। देश में 20 राज्यों की 4,403 हजार हेक्टेयर कृषि भूमि गन्ने की खेती से आच्छादित है जिसमें प्रति वर्ष 3,00,096 हजार टन गन्ने का उत्पादन होता है। इसका करीब एक तिहाई हिस्सा गुड़ खांडसारी बनाने के काम आता है। हमारे देश की सभी 434 चीनी मिलों की कुल औसत पिराई क्षमता मात्र 3,285 हजार टन प्रतिदिन की है। ये चीनी मिलें वर्षभर में औसतन सिर्फ 138 दिन ही चलती हैं। इस हिसाब से ये कुल गन्ना उत्पादन का मात्र 60 प्रतिशत हिस्सा ही पेरती हैं। शेष 40 फीसदी गन्ने में से बीज, रस आदि को निकालकर शेष बचा गन्ना गुड़ खांडसारी बनाने वाले कोल्हू, क्रेशरों पर ही जाता है। प्रति क्विंटल गन्ने से करीब 8 किलो गुड़ बनता है।

कच्चे माल के बाद में जरूरत पड़ती है स्थान, उपकरण, तथा ऊर्जा की। सो गुड़ बनाने का कोल्हू, रस पकाने के लिए 2–3 कढ़ाव, ईख पेरने के बाद बची खोई, बगास से जलने वाली भट्टियां, गर्म गुड़ ठंडा करने के लिए चाक की जरूरत पड़ती है। सड़क किनारे करीब 200 गज के प्लाट पर शेड में गुड़ बनाने का काम शुरू किया जा सकता है। कोल्हू में पॉवर के लिए बिजली या डीजल इंजन का इस्तेमाल किया जाता है।

गुड़ बनाने की एक इकाई लगाने के लिए करीब 40 से 50 हजार रुपये की पूंजी की आवश्यकता होती है। प्रायः इसे कई किसान आपस में मिलकर लगा लेते हैं। राज्य ग्रामोद्योग बोर्ड व खादी आयोग

से गुड़ उत्पादन के लिए कम ब्याज पर ऋण आदि की सुविधा उपलब्ध कराई जाती है।

गन्ने के रस से गुड़ बनाने का परंपरागत काम कारीगर करते हैं जो स्थानीय रूप से बहुतायत में मिल जाते हैं। अब इसका प्रशिक्षण भी दिया जाता है। गुड़ बनाने में अधिक लाभ कमाने के लिए जरूरी है कि गन्ना अच्छी किस्म का, स्वस्थ और ताजा हो। कोल्हू अधिक रस निकालने में सक्षम तथा न्यूनतम टूट–फूट वाला हो।

गोविंद इंडस्ट्रीज, बाराबंकी, उत्तर प्रदेश द्वारा विकसित गन्ना कोल्हू से 20 प्रतिशत अधिक रस प्राप्त होता है। इसकी क्षमता प्रति घंटा 10 क्विंटल गन्ना पेरने की है। इसे 10 हार्स पावर की मोटर से चलाया जा सकता है। इसकी मदद से एक सीजन में 3 लाख रुपये तक की अतिरिक्त कमाई की जा सकती है। यह कोल्हू पूरी तरह से स्टील द्वारा बनाया गया है।

आधुनिक पद्धति से गुड़ का उत्पादन करने के लिए रस निकालने वाले कोल्हू का सुधरा हुआ डिजाइन, उन्नत भट्टियां, रस पकाने में काम आने वाले मीटर, रस साफ करने के लिए जैविक शोधक तथा गुड़ के क्यूब्स बनाने के लिए चकोर खांचों की जरूरत पड़ती है।

भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ में गुड़ उत्पादन के संबंध में शोध एवं विकास का काफी कार्य हुआ है। परिणामस्वरूप अब गुड़ तरल तथा चूर्ण के रूप में भी बनाया जाने लगा है।

पहले बरसात के दिनों में कच्चा गुड़ नमी के कारण पिघल जाता था किंतु अब ऐसा नहीं है। गुड़ भंडारण की उन्नत विधियों से इस समस्या का हल भी सरल हो गया है। गुड़ को नमीरहित बंद कमरे में रखें। खिड़की व दरवाजे सब पूरी तरह से बंद हो। टिन की टंकियों में गुड़ को सुरक्षित रखा जा सकता है। **दादी–नानी से लेकर वैध डाक्टरों तक का यही कहना है कि भोजन के बाद में यदि थोड़ी–सी गुड़ की ढेली खा ली जाए तो भोजन पच जाता है। इसका भी वैज्ञानिक कारण है। गुड़ में 85 प्रतिशत तक मिठास, ग्लूकोज, फ्रक्टोज, प्रोटीन वसा, कैल्शियम, फास्फोरस तथा आयरन आदि लाभकारी तत्व होते हैं। प्रति 100 ग्राम गुड़ से 383 कैलोरी ऊर्जा मिलती है।** गुड़ यदि साफ–सुथरा और शुद्ध हो तो उसकी खपत का ग्राफ अभी और भी तेजी से ऊपर की ओर जा सकता है।

आजकल बाजार में रसायनरहित साफ बढ़िया गुड़ की भारी मांग है। उत्तर प्रदेश के रामपुर जिले के ज्वाला नगर स्थित पी.जे. फूड्स ने प्योर के नाम से बढ़िया सल्फररहित गुड़ का उत्पादन और वितरण शुरू किया है। इसके अतिरिक्त गुड़ की इमली–चटनी, ब्राउन शुगर, जूस कनसंट्रेट तथा टोमेटो केचप का भी उत्पादन किया जाता है। आशा की जाती है कि शीघ्र ही देश के दूसरे हिस्सों में भी नवउद्यमी इस क्षेत्र में आगे आएंगे तथा उत्तम गुणवत्तायुक्त गुड़ के उत्पादन को अपना रोजगार बनाएंगे। ❑

77–गांधी नगर, पो. इज्जत नगर
बरेली–243122 (उ.प्र.)

वर्ग पहेली

वायें से दायें :

1. एक ग्रह 5. बीता हुआ या आने वाला दिन 6. साधु का धर्म तो होता है पर यह नहीं होती 7. बुद्ध ने यहां अपने शिष्यों को पहला प्रवचन दिया था 9. जानकारी रखने वाला 11. पति की बहन 13. वायु की तरह अदृश्य रहते हुए भी उससे कहीं अधिक तीव्र दौड़ता है 14. परमाणु शक्ति का एक रूप रचनात्मक है तो दूसरा यह भी है 17. दुष्ट–दमन के लिये भगवान बार–बार लेते हैं 18. काले रास्ते पर सफ़ेद निशान छोड़ती चलती है 19. अंधकार 21. मशीन 22. घाटा 24. भगतसिंह जैसे आज़ादी के अनेक... मौत को हथेली पर लेकर घूमते थे 26. देवताओं की पुरी 27. चाट में यह न डाली जाये तो सारा मज़ा ही किरकिरा समझिए 29. लक्ष्मीबाई का नया घोड़ा इसे देखकर वहीं अड़ गया था 30. घर में यह न हो तो सारी टीमटाम बेकार हो जाती है.

संकेत

1	2	3	■	■	4	■	5	
■	6		■	7		8		■
9			10	■	■	11		12
13		■	14	15	16		■	
	■	17				■	18	
19	20	■		■		■	21	
■	22	23	■	24		25		■
26					■	27		28
■	29		■	30			■	

ऊपर से नीचे

गणपति 3. बेल 4. सबेरा 8. सिख संप्रदाय के आदि गुरू 9. राम की वानर सेना का एक प्रमुख नायक 10. सुविख्यात भारतीय चित्रकार 12. आग बुझाने का यंत्र 15. प्यार के बिना यह कोई अर्थ नहीं रखता 16. गर्मियों में इसका एक ठण्डा गिलास ताज़गी भर देता है 18. बच्चों की कमज़ोरी है यह 20. मदनमोहन मालवीय का नाम इस विशेषण के बिना अधूरा–सा लगता है 23. सूर्यकांत त्रिपाठी 24. तरबूज 25. बाचना 28. युद्ध में सिर्फ बहादुरी ही नहीं यह भी बहुत काम आती है।

वर्ग पहेली के उत्तर

बायें से दायें

1. मंगल 5. कल 6. जाति 7. सारनाथ 9. जानकार 11. ननद 13. मन 14. विनाशक 17. अवतार 18 चॉक 19. तम 21. कल 22. हानि 24. मतवाले 26. अमरावती 27. चटनी 29. नाला 30. राशन

ऊपर से नीचे

2. गजानन 3. लतिका 4. भोर 5. कथन 8. नानक 9. जामवंत 10. रवि वर्मा 12. दमकल 15. नाता 16. शरबत 18. चॉकलेट 20. महामना 23. निराला 24. मतीरा 25. वाचन 28. नीति

प्रस्तुति : आइवर यूशियल
1525/1 अवध कलोनी, सुभाष नगर, बरेली–243001

एक गांव के कायापलट की कहानी

इरा

पूना से 75 किलोमीटर की दूरी पर पूना नगर मार्ग पर है एक गांव रालेगण सिद्दी। यह कहानी इसी गांव की है। 20 साल पहले इस गांव को कोई नहीं जानता था। भारत के लाखों गांवों की तरह यहां के ग्रामवासी भी मूलभूत सुविधाओं से वंचित अभिशप्त जीवन जीने को मजबूर थे। लोगों के पास काम नहीं था, गांव में स्कूल हो, ऐसा सपना भी नहीं था गांववालों की आंखों में। लोग अनपढ़ ही नहीं काम नहीं होने की वजह से आलसी भी हो गए थे। ऐसे में उन्होंने जो रास्ता अपनाया – वो था शराब बनाना, पीना और आसपास के गांवों में बिक्री करना। उस समय गांव में 40 शराब की भट्टियां थीं। सारा गांव नशीले पदार्थों के सेवन का आदि बन गया था। खेतीबाड़ी, जायदाद साहूकारों के पास गिरवी पड़ी। प्रत्येक मनुष्य कर्ज जैसे मेहमान को घर ले आया जिसने कभी जाने का नाम नहीं लिया। अपर्याप्त बरसाती पानी पर जो भी पैदावार होती, साहूकार–महाजन ब्याज के रूप में उसे निगल लेते। घर–घर में दरिद्रता, अज्ञान, बीमारियां, दुख, अशांति बेचैनी ही बसी थी।

सन् 1975 में रालेगण सिद्दी के सुपुत्र अन्ना हजारे सेनादल से निवृत्त होकर गांव लौट आए। उन्होंने सेना में अपने दल के बहुत से साथियों को खोया था। ऐसे में उन्होंने सोचा चूंकि मैं बच गया हूं, मैं अपने गांव के लिए शेष जीवन लगा दूंगा। उन्होंने अपने प्राविडेंट फंड के 20 हजार रुपये खर्च करके गांव के यादव बाबा मंदिर का गांववालों के सहयोग से जीर्णोद्धार किया। इस मंदिर को समाजसेवा का मंदिर बनाया गया। आज भी यहां गांववाले विचार–विमर्श करते हैं और गांव के विकास के बारे में योजनाओं को एकमत से पारित किया जाता है। गांव के इसी मंदिर में 20 साल पहले इस गांव के विकास का सपना देखा गया। अन्ना हजारे ने यह सपना गांव के प्रत्येक व्यक्ति की

आंखों में रोपित किया और देखते ही देखते इस गांव के कायापलट का सिलसिला शुरू हो गया।

जलस्रोत विकास

गांव में शराबबंदी के लिए यहां जीवनस्रोत जल नियोजन का कार्य करना आवश्यक था। इसके लिए सभी गांववालों ने मिलकर बरसाती पानी को रोकने का कार्य प्रारंभ किया फलस्वरूप पानी जमीन में जमने लगा और कुंओं में पानी बढ़ने लगा। साथ ही लोगों का आत्मविश्वास बढ़ने लगा। जलस्रोत विकास के लिए गांव के पश्चिम के ऊपरी छोर के नीचे पूरब की तरफ मिट्टी और पानी को रोका गया। पहाड़ी पर जलशोषक नालियां खोदी। पहाड़ी और टीलों को पेड़–पौधे और घास लगाकर विकसित किया गया। इसके साथ–साथ बड़े पत्थरों के बांधों (लूज बोल्डर स्ट्रक्चर) का निर्माण किया। बरसात में पानी जब ऊपर से नीचे आता है तो उसके साथ मिटटी भी आती है इसी मिटटी को इकट्ठा करके रालेगण के बंजर खेतों के ऊपर डाला जाता है और उस पर खेती की जाती है। नीचे के उतार पर नालियां बडिंग, तालाब, बांध बनाए गए। जलस्रोत का पानी जिन नालियों से बहता है वहां नालियों की चौड़ाई बढ़ाई गई। वहां सीमेंट के पक्के बांध, भूमिगत बांध तथा गबियन बांधों का निर्माण किया और नालियों का सरलीकरण किया गया। इस गांव में 80 फुट गहरा और 60 फुट चौड़ा कुंआ है जहां पानी इकट्ठा होता है और यहीं से पूरे गांव के हर घर में पानी की सप्लाई होती है। गत तीन वर्षों से बरसात न होने की

वजह से जहां महाराष्ट्र के गांव ही नहीं शहर भी 24 घंटे जलापूर्ति से वंचित हैं वहां रालेगण सिद्दी में आज भी जलपूर्ति परेशानी का कारण नहीं है। वर्तमान में वहां दूरदृष्टि का परिचय देते हुए पानी की बडी टंकी का निर्माण हो रहा है। सरकार द्वारा निर्माणाधीन इस टंकी को बनवाने में प्रत्येक गांववासी भी पैसे और श्रम से सहयोग कर रहे हैं।

पानी की समस्या दूर होते ही गांववासियों को काम मिला और वर्षों से चला आ रहा कर्जा उतारा गया। चूंकि उस समय कर्जा काफी था तो गांव में सामूहिक रूप से खेती होती थी परंतु अब सारा कर्जा उतर चुका है तो काम करने वाला मुनाफे का आधा–आधा भाग बांटते हैं। रालेगण सिद्दी में मुख्यतः प्याज की खेती होती है। आज लगभग 40 लाख रुपये का प्याज निर्यात किया जाता है इससे गांववालों की आर्थिक स्थिति काफी अच्छी है। यहां गन्ने की खेती कोई नहीं करता क्योंकि इसमें पानी की आवश्यकता अधिक होती है।

विकास से जैसे–जैसे समस्याओं का सामना होता गया उससे निबटने के लिए बहुत ही मेहनत और विवेक से रास्ते निकाले गए। समय के साथ विभिन्न नई तकनीकों का इस्तेमाल किया गया और उसके प्रशिक्षण की भी व्यवस्था की गई। यहां हिन्द स्वराज ट्रस्ट में जलनियोजन का 5 दिवस, 15 दिवस और 21 दिवसीय प्रशिक्षण दिया जाता है जहां देश–विदेश के कोने–कोने से आए समाज सेवक प्रशिक्षण पाते हैं।

आदर्श गांव का संकल्प

बीस साल पहले जो आदर्श गांव का संकल्प किया गया था, उसका आज भी पालन किया जा रहा है। आदर्श गांव की परिकल्पना के अनुसार रालेगण सिद्दी में पांच नियमों का संकल्प किया गया था। पहला संकल्प था नसबंदी। गांव में प्रत्येक युगल के लिए दो बच्चों का प्रावधान है इससे अधिक बच्चों के माता–पिता को योजनाओं में शामिल नहीं किया जाता। दूसरा नियम है नशाबंदी। गांव में कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार का नशा नहीं करता। इससे समृद्धि भी आती है और सेहत भी बनी रहती है। गांव की किसी दुकान पर सिगरेट, तंबाकू या शराब की बिक्री नहीं होती है। तीसरा नियम है घासचराई बंदी। इसके तहत कोई भी ग्रामवासी अपने जानवरों को चराई के लिए खुले नहीं छोड़ते क्योंकि जानवर चराई में उपयोगी खेती व नए–नए पौधों को नुकसान पहुंचा सकते हैं। पहाड़ियों पर जब घास बड़ी होती है तो उसे काटकर जानवरों को खिलाया जाता है। सभी अपने खेतों पर जानवरों की चराई के लिए घास भी उगाते हैं। चौथा नियम है कुल्हाड़ी बंदी का। किसी भी पेड़ का काटना सख्त मना है ऐसा करने वाले को दंड मिलता है। गांव के स्कूल में रहने वाले चार सौ बच्चे प्रति वर्ष एक पौधा उगाते हैं और उसकी देखभाल करते हैं। इस गांव में चारों ओर हरियाली और पेड़ों की भरमार देखकर लगता है कि ग्रामवासी चाहे तो अपने गांव में हरितक्रांति का अनुपालन करके समृद्धि पा सकते हैं साथ ही पर्यावरण के विकास में सहयोग दे सकते हैं। पांचवा नियम है श्रमदान। गांव में मेहनत और लगन को प्रोत्साहित किया जाता है। प्रत्येक परिवार से कम से कम एक व्यक्ति एक महीना गांव की योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए श्रमदान करता है। गांववासियों के श्रमदान से ही बांध, सड़क, विद्यालय, आदि कार्यों को संपन्न किया जाता है। गांव के बीचोंबीच ग्रामवासियों के श्रमदान से बनी पाठशाला में विशाल हॉस्टल की व्यवस्था भी है और यहां उन बच्चों को प्रवेश दिया जाता है जो पहले फेल हो चुके हैं और हमारा तथाकथित समाज ऐसे बच्चों को कहीं भी प्रवेश नहीं देता है।

रालेगण सिद्दी में हर कार्य को ग्रामवासियों के सहयोग ओर सर्वसम्मति से किया जाता है। ग्रामसभा का निर्णय अंतिम माना जाता है। विविध सोसायटियों द्वारा किसानों का मार्गदर्शन, खाद, बीजों की आपूर्ति, आर्थिक सहायता, निसर्ग खेती मार्गदर्शन आदि कार्य निष्ठापूर्वक किए जाते हैं। दूध विकास सोसाइटी किसानों को दूध व्यवसाय के लिए सहायता करती है। सात सामूहिक पानी आपूर्ति संस्थाएं किसानों को सामूहिक कुंओं से पानी आपूर्ति का कार्य संभालती हैं साथ ही महिलाओं पर होने वाले अन्याय दूर करने का कार्य भी देखती हैं। महिलाओं पर होने वाले अन्याय दूर करने में महिला मंगल का बड़ा योगदान रहा है। युवामंडल द्वारा सांस्कृतिक और सामाजिक कार्य किया जाता है। इसके अंतर्गत गांव का जन्मदिन मनाने का प्रावधान है। साथ ही सामूहिक विवाह करने का आदर्श कार्य किया जाता है। यहां की संस्थाएं पंजीकृत हैं। हिसाब–किताब बिल्कुल सही रखा जाता है। प्रतिवर्ष हर संस्था का लेखा–जोखा ग्रामसभा को प्रस्तुत किया जाता है तथा ग्रामसभा की सहमति व मान्यता ली जाती है।

अन्ना हजारे आज भी इसी गांव में महीने में 15 दिन रहते हैं और विभिन्न गांवों से आने वालों से बात करके उन्हें मार्गदर्शन व प्रोत्साहन देते हैं। इस गांव के विकास के बाद 300 अन्य गांव भी विकास के इसी मार्ग पर चल कर विकसित व समद्ध हुए हैं। ❑

ई–65, वूडलैंड, परांजपे स्कीम,
कोथरुड, पुणे–411029

तृष्णा रोग से बचने के उपाय

डा. नीना कनौजिया

ग्रीष्म ऋतु का प्रभाव दिन प्रतिदिन आक्रामक हो रहा है। सभी इस ऋतु में ए.सी., कूलर, पंखे या छायादार वृक्ष के नीचे विश्राम करने के लिए व्याकुल रहते हैं। परंतु प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह संभव नहीं है, क्योंकि दो वक्त की रोटी के लिए कड़कती धूप में बगैर पसीना बहाए यह कहां संभव है!

ऐसे समय प्यास भी लगती है और व्यक्ति पानी या शीतल पेय का सेवन करता है और उसकी प्यास शांत हो जाती है। परंतु यदि यही प्यास बार–बार पानी के बाद भी शांत न हो और पानी पीने के बाद भी और पेय पीने का मन करे तो इसे सरलता से नहीं लेना चाहिए, क्योंकि यह साधारण प्यास नहीं, यह असामान्य रूप से प्यास या तृष्णा की अनुभूति होती है तब इसे **तृष्णा रोग** कहा जाता है। या दूसरे अर्थ में **एकसेसिव थर्स्ट** कहते हैं। अंग्रेजी में इसे **पोलीडिपसिया** (POLYDYPSIA) कहते हैं। इसकी उत्पत्ति का कारण शारीरिक, मानसिक तथा अन्य कारणों से होता है। प्रायः भय या परिश्रम के बाद बल से क्षीण होने से मनुष्य के तालु में प्यास की उत्पत्ति होती है।

जब मनुष्य के जलवाही स्रोत दूषित हो जाते हैं तो प्यास की उत्पत्ति होती है। जब कोई व्यक्ति शोक करता है, अत्यधिक क्रोध करता है, या अधिक व्रत रखता है, तो प्यास की उत्पत्ति होती है।

ऐसे मनुष्य भी तृष्णा रोग से पीड़ित हो सकते हैं जो अधिक मात्रा में एल्कोहल लेते हो या अधिक क्षार लेते हो, या अम्ल, नमक, कटुरस तथा उष्ण, रूक्ष या सूखे अन्न का अधिक सेवन करते हो तो ऐसी अवस्था में धातुओं के कमजोर होने से, जीर्णरोग होने से शरीर कमजोर हो जाता हैं जिससे उल्टियां या दस्त भी लग जाते हैं तब तृष्णा रोग उत्पन्न हो सकता है। गर्मियों में धूप का अहसास मात्र ही शरीर को कंपित कर देता है और फिर ऐसी धूप में यदि कोई व्यक्ति अधिक देर तक रह जाता है तो शरीर के बढ़े हुए पित्त और वायु शरीर के जलप्रधान धातुओं का शोषण करते हैं, तथा जीभ के मूल, गला, तालु क्लोम में स्थित रसवाहिनी नलियों को सुखाकर पित्त और वायु दोष तृष्णा रोग को उत्पन्न करते हैं।

सुबह–सुबह उठकर यदि आप शुद्ध शीतल वायु की अनुभूति करिए तो कितने आनंद की प्राप्ति होती है, परंतु जैसे–जैसे सूर्य का शिखर तेज होता है यही शीतल वायु, गर्म होने लगती है और इतनी गर्म हो जाती है कि शरीर के जल को सोखना शुरू कर देती है इसे हम लू या सन स्ट्रोक भी कहते हैं। ऐसी स्थिति में भी तृष्णा रोग उत्पन्न होता है और तब बार–बार पानी पीने पर भी प्यास नहीं बुझती है।

भय, परिश्रम तथा बल के नाश से प्रकुपित वात अपने प्रकोपक कारणों से प्रकुपित पित्त में मिलकर उर्ध्वगमन के द्वारा तालु में पहुंचकर प्यास को उत्पन्न कर देते हैं। और फिर दोषों से जलवाही स्रोतों के दूषित हो जाने पर भी तृष्णा की उत्पत्ति होती है।

लक्षण

– मुख में सूखापन; सिर में दर्द, शीतल पेय पीने से प्यास का और बढ़ना; मूर्छा; भोजन में अरुचि; आंखों में लाली, दाह; शरीर में बेचैनी; मुख में कड़वापन; शरीर में भारीपन; मुख में मीठापन; चोट के लगने पर अत्यधिक रक्तस्राव एवं पीड़ा के कारण तृष्णा की उत्पत्ति; हृदय में शूल; जी मिचलाना आदि।

चिकित्सा

– ऐसी स्थिति में साफ एवं शीतल पेय या पदार्थों का सेवन करना चाहिए।
– यदि वायु की वृद्धि के कारण तृष्णा रोग उत्पन्न हुआ है तो ऐसे पदार्थों का सेवन न करें जिससे वायु प्रकोपित हो जैसे गरिष्ठ भोजन, उर्द की दाल, तली–भुनी चीजें आदि।
ऐसे में गुड़ और दही को मिलाकर लेने से लाभ मिलता है।
– जो कमजोर व्यक्ति है वे दूध या धृत का सेवन कर सकते हैं।
– यदि किसी व्यक्ति को वमन या तृष्णा रोग हो तो उसे आम या जामुन के पत्तों को चार गुने पानी में उबालना चाहिए फिर जब वह एक चौथाई रह जाए, तो उसे ठंडा करके रोगी को देना चाहिए।
– अंगूर व गन्ने का रस दूध में मिलाकर देने से लाभ मिलता है।
– पानी में शहद मिलाकर देने से लाभ मिलता है।
– सत्तू में चीनी, मधु तथा पानी मिलाकर घोल तैयार कर मरीज को देना चाहिए।
– मूंग या मसूर अथवा चने की दाल, जो घी में भुना गया हो, उसे पकाकर देने से लाभ मिलता है।
– गाय का दूध, गन्ने का रस, गुड़ का शर्बत, मिश्री का शर्बत, शहद, नींबू का रस, इनको केवल मुख में धारण करने मात्र से ही तालू के सूखने की समस्या दूर हो जाती है।
– आंवले को पीसकर, घी मिलाकर, सिर पर लेप करने से भी फायदा होता है।
– सत्तू को जल में घोलकर, घी मिलाकर लेप करने से लाभ मिलता है।
– कच्चे आम को उबालकर उसका गूदा या गुठली को शरीर पर विशेषतौर से हाथ की हथेली व पैर के तालु पर मलने से लाभ मिलता है।
– ऐसे में ताजे मट्ठे का सेवन करना चाहिए।
– जब कभी फीवर, डायरिया, उल्टी, हैजा आदि रोग होता है तो भी पालीडिपसिया

हो जाता है।

तृष्णा रोग के कारण डिहाइड्रेशन से शरीर में पानी, खनिज लवण की मात्रा में कमी हो जाती है अतः इसे सरलता से नहीं लेना चाहिए।

ऐसी स्थिति में पास के किसी अस्पताल में जाना चाहिए जिससे वहां पर उन्हें नार्मल सेलाइन मुंह द्वारा या इनफ्यूसन के द्वारा दिया जाएगा। ड्रीप वगैरह के लगने से मरीज को शॉक मे जाने से रोका जा सकता है।

विशेष ध्यान देने योग्य बातें

कुछ ऐसे मरीज होते हैं जो कुछ विशेष रोगों से ग्रसित होते है तो उन्हें जल की थोड़ी–थोड़ी मात्रा देनी चाहिए जैसे –

– जो एनीमिया के शिकार होते हैं; (Hb% की कमी)

– जो पेट के रोग से ग्रसित हों;

– डायबीटिज़ के मरीज हों;

– जिनकी जठराग्नि प्रबल न हो;

– अतिसार व तिल्ली रोग में भी।

क्योंकि यदि रोगी सर्वथा जल का त्याग नहीं कर सकता है तो अपनी इच्छानुसार, थोड़ी–थोड़ी मात्रा में पानी ले सकता है।

अतः यदि गर्मी के दिनों में कुछ बातों को ध्यान में रखें तो तृष्णा रोग से कुछ हद तक बचा जा सकता है। जैसे

– कच्चे प्याज का सेवन अधिक करें।

– आम का पना रोज पिएं।

– नींबू, चीनी, जीरा, नमक मिश्रित जल का सेवन जरूर करें।

– कहीं जाएं तो पानी की बोतल साथ ले जाएं।

– जूस, सूप का सेवन अधिक करें।

– जल वाले फलों का सेवन अधिक करें जैसे खीरा, तरबूज, खरबूजा, ककड़ी आदि।

– सब्जियों और दालों का प्रयोग करें।

– धूप में जब निकलें तो छतरी व चश्मों का प्रयोग करें। हाथों में कॉटेन के दस्तानों का प्रयोग कर सकते हैं।

– त्वचा की रक्षा के लिए सनक्रीम का प्रयोग करें।

– घर से निकलने से पूर्व पानी पीकर निकलें परन्तु गर्मी से बाहर आने के तुरंत बाद ही पानी न पिएं। थोड़ा विश्राम कर तब ही जल पिएं।

– बेल का शर्बत पिएं।

– दिन भर में कई बार, चेहरे, हाथों, पैरों को पानी से धोते रहें, आदि।

यदि हम इन छोटी–छोटी बातों को ध्यान दें और साथ में अपने लोगों का ध्यान रखें तो हम बड़ी मुसीबत से बच सकते हैं। ❑

प्रश्नोत्तरी

(1) निम्नलिखित में से कौन–सी नदी पूर्व की ओर बहती है?
(क) कावेरी
(ख) सोन
(ग) नर्मदा
(घ) ताप्ती

(2) विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू एच ओ) का मुख्यालय स्थित है?
(क) न्यूयार्क
(ख) जेनेवा
(ग) लंदन
(घ) पेरिस

(3) प्रथम 'एशियाड' किस वर्ष में आयोजित हुआ?
(क) 1951
(ख) 1953
(ग) 1954
(घ) 1956

(4) औद्योगिक क्रांति सबसे पहले कहां हुई?
(क) जर्मनी
(ख) इंग्लैंड
(ग) फ्रांस
(घ) इटली

(5) इनमें से कौन–सा देश मेग्सेसे पुरस्कार प्रदान करता है?
(क) फिलीपींस
(ख) न्यूजीलैंड
(ग) यू.एस.ए
(घ) ब्रिटेन

(6) इनमें से 'मुद्राराक्षस' के लेखक कौन हैं?
(क) कौटिल्य
(ख) विशाखदत्त
(ग) कल्हण
(घ) कालीदास

(7) एक हेक्टेयर बराबर है?
(क) 1.5 एकड़
(ख) 2.5 एकड़
(ग) 10 एकड़
(घ) 20 एकड़

(8) किस प्रदेश में सर्वाधिक चीनी मिलें हैं?
(क) उत्तर प्रदेश
(ख) महाराष्ट्र
(ग) गुजरात
(घ) मध्य प्रदेश

(9) डीजल इंजन का आविष्कार किस देश के इंजीनियर ने किया?
(क) जर्मन इंजीनियर
(ख) अमेरिकन इंजीनियर
(ग) ब्रिटिश इंजीनियर
(घ) इनमें से कोई नहीं

(10) दक्षिणी अफ्रीका प्रवास के दौरान गांधी जी ने कौन–सा पत्र प्रकाशित किया?
(क) इंडियन ओपिनियन
(ख) यंग इंडिया
(ग) अफ्रिकनर
(घ) नवजीवन

उत्तर
1) क 2) ख 3) क 4) ख 5) क
6) ख 7) ख 8) क 9) ख 10) क

अच्छी सेहत के लिए पर्याप्त नींद जरूरी

डा. दिनेश मणि

आज के आधुनिक परिवेश में अधिकांश लोगों को नींद न आने की आम शिकायत रहती है। तरह–तरह की नींद की गोलियां भी पूरी तरह आराम नहीं दे पातीं। इनकी आदत पड़ने पर तो प्रायः गोलियों की मात्रा बढ़ाते रहने से ही नींद आती है और इसका नतीजा होता है अन्य दूसरी बीमारियां।

दिनभर व्यस्त रहने के बाद हमें कुछ थकान–सी प्रतीत होने लगती है तथा शरीर टूटने लगता है। हमारे शरीर के तंतु टूटते–बनते रहते हैं। अधिक कार्य करने से ये तंतु अधिक टूट जाते हैं तथा पूरी तरह से और अधिक नहीं बन पाते। तब अंग ढीले पड़ने लगते हैं और शारीरिक स्फूर्ति खत्म हो जाती है। रात के समय जब हम विश्राम करते हैं तब ये तंतु नए सिरे से बनने लगते हैं और हममें पुनः नई चेतना का स्फुरण होता है। अतः शारीरिक शक्ति और स्फूर्ति के लिए नींद अत्यावश्यक है।

नींद हर व्यक्ति के लिए बहुत जरूरी है, क्योंकि नींद से मस्तिष्क व शरीर को आराम मिलता है जिससे तरोताजा होकर ही हम अगले दिन का कार्य करते हैं। लेकिन नींद के समय ऐसी कौन–सी प्रक्रियाएं होती हैं जिनसे आराम मिलता है, यह कह पाना कठिन है। ऐसा अनुमान है कि नींद के समय शरीर की क्रियाएं जो कम हो जाती हैं उसी से आराम मिलता है।

पूरी तरह आराम के लिए कम से कम कितनी देर सोना चाहिए, इस प्रश्न का उत्तर भी सरल नहीं है। कई लोगों को लंबी खर्राटेदार नींद लेने पर भी आराम नहीं मिलता, जबकि इसके विपरीत ऐसे भी होते हैं जो चार–पांच घंटों की नींद लेकर ही तरोताजा हो जाते हैं। कुछ लोगों को नींद के लिए साफ–सुथरा बिस्तर, नर्म तकिया, शांत वातावरण व उचित तापमान चाहिए, तो दूसरे लोगों की नींद रेल के डिब्बे या ऊबड़–खाबड़ जमीन पर भारी शोरगुल के बीच भी नहीं टूटती।

साधारणतया प्रत्येक व्यक्ति को आठ घंटे सोना चाहिए, परंतु वैज्ञानिक अध्ययन तथा सर्वे से ज्ञात हुआ है कि नींद के लिए विशिष्ट घंटे नियत नहीं किए जा सकते। कुछ लोग केवल पांच घंटे सोते हैं तो कुछ छह घंटे या आठ–नौ घंटे तक भी सोते हैं। अतः नींद के लिए कोई समय निर्धारित नहीं किया जा सकता। ये सर्वथा पृथक रूप से व्यक्ति–व्यक्ति पर निर्भर है। कुछेक ऐसे बुद्धिजीवियों के उदाहरण भी हैं जो केवल तीन–चार घंटे ही सोते हैं और उनके स्वास्थ्य पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता।

नींद को लेकर एक विकट प्रश्न यह है कि यदि किसी व्यक्ति को काफी समय तक नींद न आए तो क्या होगा? दो–तीन दिन नींद न आने से व्यक्ति के शरीर में दर्द व कमजोरी, आंखों में जलन व भारीपन महसूस करता है और यहां तक कि वह अपना मानसिक संतुलन भी खो बैठता है।

अनिद्रा रोग के उपचार के लिए कई प्रकार की औषधियों का उपयोग किया जाता है। इन औषधियों के पूरे समुदाय को सेडेटिव एवं हिप्नोटिक्स कहते हैं। इन औषधियों के सेवन से इनकी लत पड़ने का एक भय बना रहता है इसलिए इन्हें लगातार लंबे समय तक नहीं लेना चाहिए। एक बार लत पड़ जाने पर यदि रोगी को यह औषधि नहीं मिलती, तो उसके परिणाम घातक हो सकते हैं जैसे शरीर में ऐंठन, दाने आना, अनिद्रा, बेहोशी आदि। अनिद्रा का यदि समय पर उपचार न किया जाए तो मृत्यु का भी भय हो सकता है। इसलिए इन औषधियों को कानून के अनुसार चिकित्सक की लिखित आज्ञा के बिना नहीं खरीदा या बेचा जाता।

प्रत्येक काम के लिए समय नियत कर लेना चाहिए। नींद के लिए तो यह और भी आवश्यक है। हमारे शरीर में 24 घंटे एड्रोनल हारमोन का रक्त में मिश्रण होने के कारण शिराओं का रक्तप्रवाह एक विशिष्ट क्रम से होता है और हमारी कार्य करने की शक्तियां उसी के अनुसार बढ़ती–घटती रहती हैं। जब मनुष्य को थकावट होती है तो शरीर का तापमान कुछ गिर जाता है किंतु सोते समय यह तापमान बढ़ने लगता है तथा शक्ति पुनः बढ़ जाती है। परंतु अब वह शरीर में नवशक्ति का संचरण न कर एक अजीब–सी बेचैनी उत्पन्न कर देता है। शरीर टूटने लगता है। ऐसी स्थिति में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

प्रायः चिंताओं, उलझनों आदि के कारण नींद नहीं आती। हर समय मानसिक तनाव के कारण रात भर करवट बदलते रहते हैं। ऐसी स्थिति में तनाव से छुटकारा पाना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब हम इन उलझनों की ओर ध्यान न देकर उसे किसी रुचिकर कार्य की ओर केंद्रित कर लें। सोने से पहले कोई रोचक पत्रिका या पुस्तक पढ़ने से अथवा संगीत आदि सुनने से तनाव की स्थिति समाप्त हो जाती है तथा अपने आप नींद आ जाती है।

कुछ लोग, जिन्हें नींद नहीं आती, नींद की गोलियां खाकर अथवा शराब पीकर सो जाते हैं। ये दोनों ही चीजें अत्यंत हानिकर हैं। नींद की गोलियां खाकर सोने वाले व्यक्ति की देह धीरे–धीरे उन गोलियों की आदी होने लगती है। फिर प्रतिदिन के सेवन करने पर भी जब नींद नहीं आती तो वे मात्रा बढ़ाने लगते हैं, जो शरीर के लिए हानिकर साबित होती है। वैज्ञानिक खोजों से पता चलता है, दूध में अमोनिया एसिड होता है जो धीरे–धीरे अनिद्रा दूर करता है। अतः शराब अथवा नींद की गोलियां खाकर सोने की अपेक्षा दूध पीकर सोना लाभदायक है।

अनिद्रा से पीछा छुड़ाने का सरल और सीधा उपाय है आत्मसुझाव। यानी अपने आपसे यह बार–बार और जोर से कहिए– आज की रात मैं बहुत जल्दी सो जाऊंगा। पहले इसे जोर से कहिए और दस सेकंड बाद फिर चुपचाप या मन ही मन कई बार दोहराइए। दूसरा कारगर तरीका यह है कि अपने सोने के घंटे कम कर दीजिए। यानी एक घंटा पहले ही उठ जाएं। कुछ दिनों बाद जब आप जल्दी सोने लगें तो धीरे धीरे सोने का वक्त भी बढ़ा दे।

सोने से पहले की तैयारी के रूप में कुछ क्रियाकलाप नित्य करने की आदत डालिए, ताकि आप तुरंत सो जाने की क्षमता पर काबू पा सकें। जैसे, सोने से पहले हाथ–पैर और चेहरा धो–पोंछ लें, दांत साफ करें, खिड़की खोल दें, पायजामा या सोने की पोशाक पहनें। इस तरह के जो काम पहले से करते हों, उनमें कम से कम ऐसे ही चार काम और जोड़ लें। ये सब काम एकदम ठीक व चुस्ती से हों और उनका क्रम भी बदले नहीं। जहां इनकी आदत पड़ी कि फिर नींद भी तुरंत आने लगेगी। ❑

पूर्व संपादक, "विज्ञान" मासिक पत्रिका
47/29, जवाहरलाल नेहरू रोड
जार्ज टाउन, इलाहाबाद–211002

पत्रकारिता की विविध विधाओं की चर्चा

पुस्तक : हिन्दी पत्रकारिता एक परिदृश्य
संपादक : अमरेन्द्र कुमार
प्रकाशक : सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली
पृष्ठ संख्या : 200
मूल्य : 200 रुपये

सूचना प्रौद्योगिकी के विकास के साथ–साथ पत्रकारिता में एक ऐसा बदलाव आया है जो अलग से रेखांकित करने लायक है। उदारीकरण का चकाचौंधी प्रभाव हर क्षेत्र में पड़ा है। पत्रकारिता भी इससे अलग नहीं है। इसकी उद्देश्यपरकता तो कायम है लेकिन व्यावसायिकता हावी हो गई है। वह समय बीत गया जब पत्रकारों के समक्ष आदर्शों की मशाल जलती थी और पत्रकार समाज के समक्ष मिसाल बनते थे। अब लोग पत्रकारिता से जुड़ते हैं और उसे प्रोफेशन के रूप में अपनाते हैं। इस पतन के बावजूद पत्रकार समाज के पहरुआ एवं दिशा निर्देशक है।

पत्रकारिता अब प्रोफेशन हो गई है और बहुत सारे युवक एवं युवतियां इस ओर दौड़ रहे हैं। विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं संस्थानों में पत्रकारिता के अध्ययन–अध्यापन का दौर चल पड़ा है। इसकी नई तकनीक, नए तेवर और विषय प्रतिपादन ने नए आयाम उद्घाटित किए हैं। वर्तमान समय में पत्रकारिता के बढ़ते महत्व तथा स्वयं पत्रकारिता के बहुआयामी होने के साथ ही उसके लिए लिखित सामग्री की आवश्यकता महसूस की जाने लगी है। हिंदी पत्रकारिता से संबंधित पुस्तकों के अभाव की शिकायत खासतौर से रही है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर सन्मार्ग प्रकाशन (जवाहर नगर, दिल्ली) की ओर से *हिन्दी पत्रकारिता–एक परिदृश्य* पुस्तक बाजार में लाई गई है। इसका संपादन अमरेन्द्र कुमार ने किया है जो पहले भी हिंदी पत्रकारिता से संबधित कई पुस्तकों का लेखन एवं संपादन कर चुके हैं। उनके पास पत्रकारिता के व्यापारिक पक्षों की पूंजी है जिसे इस पुस्तक में उन्होंने बड़े ही सहज तरीके से रखने का काम किया है।

पुस्तक में पत्रकारिता की कई विधाओं जैसे टेलीविजन पत्रकारिता, फीचर लेखन, रिपोर्ताज, खोजी पत्रकारिता, रेडियो वार्ता, रिर्पोटिंग को विषयांकित कर उन पर लेख दिए गए हैं। इन लेखों में उनकी संरचना, कार्यशैली, लेखन प्रस्तुतिकरण आदि को बारीकी से उजागर करने का प्रयास किया गया है। ऐसे में पत्रकारिता के लिहाज से यह पुस्तक महत्वपूर्ण है। वैसे पत्रकारिता की विधाओं के साथ ही उसके कार्यक्षेत्र पर भी पुस्तक में चर्चा की गई है। इनमें एक ओर जहां फिल्म पत्रकारिता, खेल पत्रकारिता एवं कला संस्कृति पत्रकारिता के वर्तमान स्वरूप के बारे में बताया गया है, वहीं साहित्यिक पत्रकारिता के इतिहास का उल्लेख भी है। इसके अलावा ज्योतिष पत्रकारिता तथा आंचलिक पत्रकारिता का एक विधिवत परिचय भी पुस्तक में उपलब्ध है। वर्तमान पत्रकारिता की चुनौतियां एवं सांप्रदायिक सद्भाव और हिन्दी पत्रकारिता के लेख इस पुस्तक का उल्लेखनीय पक्ष है। इस पक्ष को बड़े ही सवेंदनात्मक ढंग से पुस्तक में रखा गया है जो शिक्षाविदों एवं अन्य बुद्धिजीवियों के लिहाज से भी श्रेष्ठ दिखता है।

वैसे विदेशों में हिन्दी पत्रकारिता संबधी लेख ही इस पुस्तक को पत्रकारिता की अन्य पुस्तकों से भिन्न करता है। पत्रकारिता की भाषा तथा प्रेस से संबधित कानून जैसे बारीक विषयों पर लिखे लेखों के माध्यम से इस पुस्तक को पत्रकारिता के छात्रों के लिहाज से पूर्ण करने की कोशिश की गई है।

वैसे पुस्तक में कई लेख छोटे होने के कारण सभी पक्षों को समेट पाने में सफल नहीं हो पाए हैं। फिर भी इस पुस्तक में अनेक सार्थक, प्रासंगिक तथा उपयोगी लेख हैं जिनका संपादन कुशलता एवं बारीकी से किया गया है जिससे यह पुस्तक संग्रहणीय बन पड़ी है।

आसीत कुणाल
बी–205, केन्द्रीय विहार
से.–51, नोयडा

से संबंधित सभी विकास योजनाओं का उत्तरदायित्व संभालने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। स्वसहायता समूहों पर आधारित लघु वित्तपोषण की योजनाओं का, विशेषतया पिछड़े और पारिस्थितिकीय रूप से संवेदनशील क्षेत्रों में व्यापक विस्तार किया जाएगा।

यह चिंता का विषय है कि आज भी भारत में पैदा होने वाला हर तीसरा बच्चा सामान्य से कम वजन का पैदा होता है जो विशेषकर बालिकाओं के गंभीर कुपोषण को दर्शाता है। पोषाहार कार्यक्रमों का विशेषतः बालिकाओं हेतु बड़े पैमाने पर विस्तार किया जाएगा। बेहतर स्वास्थ्य विकास की प्रक्रिया का अनिवार्य अंग है और रहन–सहन के स्तर में सुधार लाने का महत्वपूर्ण कारक है। सरकार प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल को तरजीह देते हुए अगले पांच वर्षों में स्वास्थ्य पर होने वाले सरकारी खर्च को बढ़ाकर इसे सकल घरेलू उत्पाद के कम से कम 2–3 प्रतिशत तक ले जाएगी। निवारणीय बाल रोगों का उन्मूलन करने के लिए पूरे देश में व्यापक रोग प्रतिरक्षण कार्यक्रम कारगर ढंग से चलाए जाएंगे।

भारत का सबसे बड़ा संसाधन इसके लोग हैं। हमारे मानव संसाधन की पूरी क्षमता का अभी कारगर ढंग से उपयोग किया जाना है। इसलिए शिक्षा को उच्च प्राथमिकता दी जाएगी। सरकार का लक्ष्य शिक्षा पर सरकारी खर्च में वृद्धि करने का रहेगा जिससे कि अंततः यह सकल घरेलू उत्पाद के कम से कम 6 प्रतिशत तक पहुंच जाए जिसमें से आधी राशि प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए निर्धारित की जाएगी। उत्तम बुनियादी शिक्षा को सब तक पहुंचाने के लिए की गई वचनबद्धता के वित्तपोषण के लिए सभी केंद्रीय करों पर उपकर लगाने का प्रस्ताव लाया जाएगा। संसाधनों के आवंटन और कार्यक्रमों की निगरानी के लिए एक राष्ट्रीय शिक्षा आयोग का गठन किया जाएगा। सरकारी नौकरियों में प्रोन्नति संबंधी कोटे सहित आरक्षण के कोटे समयबद्ध तरीके से पूरे किए जाएंगे। सरकार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लोगों की भूमि की लघु सिंचाई का एक व्यापक राष्ट्रीय कार्यक्रम शुरू करेगी। भूमि की अधिकतम सीमा और पुनर्वितरण विधान को कार्यान्वित करके भूमिहीन परिवारों को भूमि मुहैया कराई जाएगी। अधिकतम सीमा विधान को बदलने की कोई अनुमति नहीं दी जाएगी।

वनों में काम करने वाले कमजोर वर्ग के लोगों को गौण वनोत्पाद में स्वामित्व का अधिकार प्रदान किए जाने के लिए एक विधान लाने हेतु राज्यों सरकारों से आग्रह किया जाएगा। आदिवासी समुदायों और वनों में रहने वाले अन्य समुदायों की वन क्षेत्रों से बेदखली को रोका जाएगा। विकास परियोजनाओं के कारण विस्थापित जनजातीय समुदायों का पुनर्वास करने के लिए एक कारगर प्रणाली बनाई जाएगी। सरकार, विशेषतौर पर देश के निर्धनतम और पिछड़े इलाकों में सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुदृढ़ बनाएगी और स्थानीय स्तर पर इसके प्रबंधन में महिलाओं और पूर्व–सैनिकों की सहकारी संस्थाओं को भी शामिल करेगी। यह सुनिश्चित करने के लिए कि अत्यधिक निर्धन और असहाय तक खाद्यान्न पहुंचे, विशेष योजनाएं शुरू की जाएंगी। गंभीर रूप से खाद्यान्न अभावग्रस्त क्षेत्रों में अनाज बैंक स्थापित किए जाएंगे। ऐसे परिवारों को अन्त्योदय कार्ड दिए जाएंगे जिनका भूख से पीड़ित होना संभावित हो।

सभी श्रमिकों, विशेषतया असंगठित क्षेत्र के श्रमिक, जो हमारे कुल श्रमिक बल के 90 प्रतिशत से अधिक हैं, के कल्याण को सुनिश्चित करने के लिए सरकार पूर्णतया प्रतिबद्ध है। ऐसे श्रमिकों, मछुवारों, ताड़ी संग्राहकों, चर्मउद्योग के श्रमिकों, बागान श्रमिकों, बीड़ी मजदूरों आदि के लिए सामाजिक सुरक्षा, स्वास्थ्य बीमा और अन्य योजनाओं का विस्तार किया जाएगा। सरकार असंगठित क्षेत्र के उद्यमों के सामने आ रही समस्याओं पर विचार करने के लिए एक राष्ट्रीय आयोग स्थापित करेगी। मेरी सरकार मानती है कि श्रम कानूनों में कुछ परिवर्तनों की आवश्यकता है, जिससे उत्पादन के क्षेत्र मे तीव्र विकास हो और साथ ही रोजगार के अवसरों में वृद्धि हो। तथापि, इस प्रकार परिवर्तन करते समय यह सुनिश्चित करना चाहिए कि श्रमिक और उनके परिवार पूर्णतया सुरक्षित रहें। इस विषय पर विशिष्ट प्रस्ताव लाने से पहले सरकार उद्योग एवं मजदूर संघों से वार्ता करेगी।

सरकार झुग्गी–झोंपड़ी में निवास करने वालों की जरूरतों पर खास ध्यान देते हुए शहरी नवीकरण तथा कस्बों व नगरों में सामुदायिक आवास के विस्तार का एक व्यापक कार्यक्रम प्रारंभ करेगी। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में कमजोर तबकों के लिए आवास कार्यक्रम का बड़े पैमाने पर विस्तार किया जाएगा। शहरी नवीकरण करते समय बलपूर्वक विस्थापन करने और झुग्गी–झोंपड़ियों को तोड़ने से बचा जाएगा। सरकार आर्थिक विकास में पर्यटन द्वारा देश के हर दूरदराज के भागों में भी, अकुशल से लेकर विशेषज्ञता प्राप्त, बेरोजगार जनसमूह को लाभकारी रोजगार मुहैया कराने के महत्व को समझती है। सरकार ग्रामीण पर्यटन, धरोहर पर्यटन, साहसपरक और पारिस्थितिक पर्यटन को बढ़ावा देने और उच्च कोटि के पर्यटन स्थल स्थापित करने को समुचित प्रोत्साहन देगी।

औद्योगिक विकास में पुनः गति लाना महत्वपूर्ण है। निजी निवेश को बढ़ावा देने के लिए प्रोत्साहन शुरू किए जाएंगे। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को बढ़ावा दिया जाता रहेगा। भारतीय उद्योग को उत्पादनशील और प्रतिस्पर्धात्मक बनाने के लिए हर प्रकार की सहायता दी जाएगी। खुली व निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देने वाली दक्ष विनियामक संस्थाएं यह सुनिश्चित करेंगी कि पूरे उद्योग जगत में आतंरिक व बाह्य, दोनों प्रकार की प्रतिस्पर्धा और अधिक गहन बने। सरकार नीतिगत तालमेल के लिए एक स्थायी मंच प्रदान करने हेतु एक राष्ट्रीय उत्पादन प्रतिस्पर्धा परिषद की स्थापना करेगी ताकि उत्पादन उद्योग का विकास होता रहे और इसमें नई ऊर्जा का संचार हो। शिल्पकारों और गृह उद्योगों द्वारा किए जा रहे उत्पादन कार्य में और अधिक प्रौद्योगिकीय, विपणन और निवेश संबंधी सहायता दी जाएगी। शीघ्र ही लघु उद्योग क्षेत्र के लिए एक वृहद् संवर्धनात्मक पैकेज की घोषणा की जाएगी।

यह अवश्यंभावी है कि भारत उदीयमान विश्व अर्थव्यवस्था की एक प्रमुख शक्ति बनकर उभरेगा और इस प्रक्रिया में हमारे समाज के बड़े भाग को अभी भी प्रभावित करने वाली अत्यधिक गरीबी, अज्ञानता और बीमारी से छुटकारा मिल सकेगा। जनता के प्रतिनिधियों के रूप में आपका यह दायित्व है कि हमारी जनता के इस उमड़ते आवेग को सही दिशा दें जिससे कि अभाव और शोषण के भय से मुक्त एक नए भारत का निर्माण हो सके।❑

आर. एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी.एल. 12057/2003-05
आई.एस.एस.एन. 0971-8451, पूर्व भुगतान के बिना आर.एम.एस.
दिल्ली में डाक में डालने के लिए लाइसेंस : यू (डी.एन.) -55/2003-5

R.N./708/57
P&T Regd. No. DL 12057/2003-05
ISSN 0971-8451, Licenced under U (DN)-55/2003-05
to Post without pre -payment at R.M.S. Delhi.

भारतेंदु हरिश्चंद्र पुरस्कार

प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारतेंदु हरिश्चंद्र पुरस्कार योजना के अंतर्गत वर्ष 2003 के पुरस्कारों के लिए प्रविष्टियां आमंत्रित करता है। 1 जनवरी, 2003 से 31 दिसंबर, 2003 के दौरान लिखित निम्नलिखित विषयों पर प्रकाशित/अप्रकाशित पांडुलिपियों पर पुरस्कार प्रदान किए जाएंगे :–

(क) पत्रकारिता एवं जनसंचार

यह पुरस्कार हिंदी में जनसंचार के विभिन्न माध्यमों पत्रकारिता, प्रचार, विज्ञापन, रेडियो, टेलीविजन, फिल्म, मुद्रण, प्रकाशन आदि विषयों पर मौलिक लेखन को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से प्रकाशित पुस्तकों/पांडुलिपियों के लिए दिया जाता है।

प्रथम पुरस्कार	35,000/– रुपये
द्वितीय पुरस्कार	25,000/– रुपये
तृतीय पुरस्कार	20,000/– रुपये
मान पुरस्कार (5)	5,000/– रुपये (प्रत्येक)

(ख) राष्ट्रीय एकता

यह पुरस्कार राष्ट्रीय एकता से संबंधित विषयों पर लिखी पुस्तकों के लिए दिया जाता है।

प्रथम पुरस्कार	15,000/– रुपये
द्वितीय पुरस्कार	10,000/– रुपये

(ग) महिला समस्या

यह पुरस्कार समाज में महिलाओं की स्थिति से संबंधित समसामयिक विषयों पर लिखी पुस्तकों के लिए महिला लेखिकाओं को दिया जाता है।

प्रथम पुरस्कार	15,000/– रुपये
द्वितीय पुरस्कार	10,000/– रुपये

(घ) बाल साहित्य

यह पुरस्कार बच्चों के लिए लिखी गई पुस्तकों पर दिया जाता है।

प्रथम पुरस्कार	15,000/– रुपये
द्वितीय पुरस्कार	10,000/– रुपये

पुरस्कार संबंधी नियम, प्रविष्टि प्रपत्र तथा पूर्ण विवरण मंगाने के लिए सहायक निदेशक (राजभाषा), प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, नई दिल्ली–110 001 को लिखें अथवा संपर्क करें। आवेदन पत्र के साथ अपना पता लिखा बिना टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।

प्रविष्टियां प्राप्त करने की अंतिम तिथि : 31 जुलाई, 2004

प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय

प्रो. उमाकांत मिश्र, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और मुद्रित।
मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा. लि., डब्ल्यू-30 ओखला इंडस्ट्रीयल एरिया-II, नई दिल्ली-20 : प्रभारी संपादक : ललिता खुराना